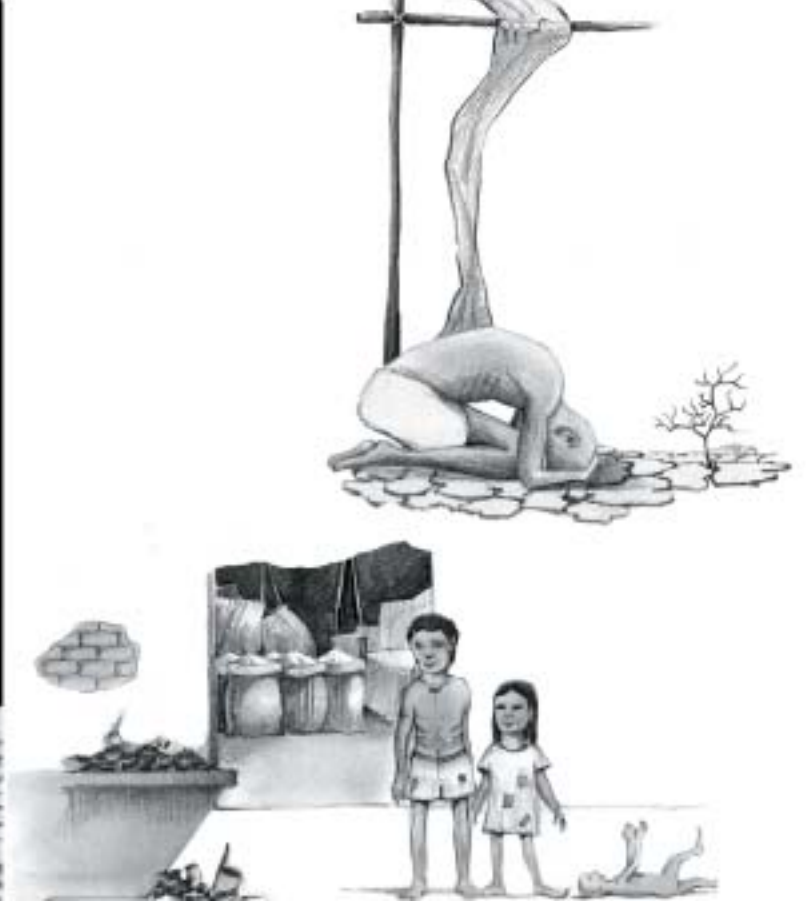


राष्ट्रमंडल में गरीबी



राष्ट्रमंडल में रहने वाले अधिकतर लोग गरीब हैं। इनमें से बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो घोर गरीबी में जी रहे हैं। राष्ट्रमंडल की करीब 200 करोड़ की आबादी का एक तिहाई—यानी करीब 70 करोड़ लोग ऐसे हैं जो प्रतिदिन 1 अमेरिकी डॉलर से भी कम आय में गुज़ारा करते हैं।¹ यह इस बात का प्रमाण है कि दुनिया की कुल आबादी में नगण्य आय के साथ अस्तित्व के लिए संघर्ष करने वालों में से आधे लोग राष्ट्रमंडल में रहते हैं।² राष्ट्रमंडल के निर्धनों में दो-तिहाई से अधिक (53 करोड़) लोग दक्षिण एशिया में हैं, जो प्रतिदिन 1 अमेरिकी डॉलर से कम आय में गुज़र-बसर कर रहे हैं। जहाँ तक भारत का सवाल है, इसके गरीबों में करीब 35 प्रतिशत ऐसे हैं जिनकी दैनिक आय 1 अमेरिकी डॉलर से भी कम है। राष्ट्रमंडल के नागरिकों का अधिसंख्य हिस्सा (64 प्रतिशत) यानी 128 करोड़ लोग—प्रतिदिन 2 अमेरिकी डॉलर से कम आय में जीवन-यापन करते हैं। इनमें से 100 करोड़ दक्षिण एशिया में हैं। बांग्लादेश में यह संख्या 78% है। इसका अर्थ है कि वहाँ 10 करोड़ नागरिक गरीबी की दलदल में फंसे हैं। राष्ट्रमंडल के सबसे अधिक जनसंख्या वाले देश, भारत में 86% या करीब 86 करोड़ लोग संसाधनों की इस गरीबी से जूझ रहे हैं।³ दक्षिण एशिया में सबसे गरीब 20% लोग अपने-अपने देश की राष्ट्रीय आय का 10% से कम हिस्से का अर्जन और उपभोग करते हैं, जबकि सबसे अमीर 10% लोग 25% से अधिक आय का अर्जन और उपभोग करते हैं।⁴ यह स्पष्ट असमानता इस क्षेत्र में गरीबी का कारण और परिणाम दोनों है।

गरीबी की वजह से होने वाले अधिकारों के हनन पर अगर एक निगाह डालें, तो बड़ी घृणित तस्वीर सामने आती है। गरीबी महिलाओं और पुरुषों, दोनों को ही दयनीय आर्थिक और सामाजिक जीवन जीने के लिए मजबूर करती है, जिससे उन्हें भूख और बीमारियों का सामना करना पड़ता है। भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका में गरीबों के पांचवें हिस्से से अधिक लोगों को समुचित मात्रा में बुनियादी पोषण नहीं मिल पा रहा है जबकि बांग्लादेश में 38 प्रतिशत निर्धन कुपोषण का शिकार हैं। विश्वभर में खून की कमी से ग्रस्त महिलाओं में आधी महिलाएं दक्षिण एशिया में रहती हैं।⁵ एचआईवी/एड्स, मलेरिया और क्षयरोग (इनमें अंतिम दो साध्य रोग हैं) से करोड़ों लोगों की जानें जाती हैं। इसी तरह बड़ी संख्या में शिशु मृत्यु और प्रसव के समय महिलाओं की मौत होती है। हर वर्ष करीब 20 लाख लोग



क्षयरोग का शिकार होते हैं और इस तरह विश्वभर में किसी भी संक्रामक रोग के मुकाबले क्षयरोग से सर्वाधिक मौतें होती हैं। सन् 2020 तक करीब 100 करोड़ लोगों के इस बीमारी से ग्रस्त होने की आशंका है, जिसमें से अधिकतर नए मामले दक्षिण एशिया में सामने आ रहे हैं। भारत में प्रति 1,00,000 लोगों में से 94-107 लोग क्षयरोग से संक्रमित हैं और क्षयरोग संक्रमण की दृष्टि से अफ्रीकी उप-सहारा क्षेत्र के बाद भारत का दूसरा स्थान है।⁷ मलेरिया से मरने वाले 30 करोड़ लोगों में से 90 प्रतिशत मौतें अफ्रीका में होती हैं और उनमें से 20 प्रतिशत मृतक 5 वर्ष से कम आयु के बच्चे होते हैं।⁸ विश्व के कुल कुष्ठ रोगियों में से 70% भारत में हैं।⁹

विश्वभर में एच आई वी से ग्रस्त 60 प्रतिशत मामले राष्ट्रमंडल देशों में पाए गए हैं और इस विषाणु से सर्वाधिक संक्रमित देशों में से 9 देश राष्ट्रमंडल के सदस्य हैं।¹⁰ ज़ाम्बिया में 1998 में 1300 शिक्षकों की मौत एड्स के कारण हुई। यह संख्या उस वर्ष के प्रशिक्षार्थी शिक्षकों के दो-तिहाई से अधिक थी। ज़िम्बाब्वे में 2001 में कृषि-उत्पादन में 50 प्रतिशत की कमी आयी क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में एच आई वी/एड्स से सम्बद्ध मौतों की संख्या में तीव्र बढ़ोतरी हुई थी।¹¹ करीब 40 लाख भारतीय आज इस विषाणु से संक्रमित हैं और एच आई वी से ग्रस्त लोगों की वास्तविक संख्या की दृष्टि से दक्षिण अफ्रीका के बाद भारत का दूसरा स्थान है। राष्ट्रमंडल में करीब 60 प्रतिशत लोगों को अनिवार्य औषधियां और समुचित स्वच्छता सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं।

भारत में एक-तिहाई से भी कम आबादी को उन्नत स्वच्छता सुविधाएं उपलब्ध हैं— जो दक्षिण एशिया में निम्नतम है।¹² राष्ट्रमंडल में करीब 27 करोड़ लोगों को स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति उपलब्ध नहीं है।¹³ शायद एच.आई.वी./एड्स से भी ज्यादा खतरा लोगों को पेयजल स्रोतों के आर्सेनिक ज़हर से ग्रस्त होने के कारण पैदा हो गया है।¹⁴ आर्सेनिक ज़हर के असर संबंधी ताजा अध्ययन से पता चला है कि अकेले भारत और बांग्लादेश में इसके दुष्प्रभाव का खतरा दोगुना हो गया है। करीब 33 करोड़ इस खतरे का शिकार बन रहे हैं।¹⁵

अनेक लोगों को गरीबी के कारण गंभीर बीमारी का सामना करना पड़ता है। गरीबों को अक्सर ऐसा रोज़गार मिलता है जिसमें शारीरिक श्रम की आवश्यकता अधिक पड़ती है किन्तु कुपोषण बीमारी से लड़ने की उनकी शक्ति और क्षमता को कम कर देती है। बांग्लादेश में एक-तिहाई से अधिक और भारत में एक चौथाई नागरिक कुपोषण से ग्रस्त हैं और बीमारी का खतरा झेल रहे हैं। बीमारी के कारण लोग काम पर नहीं पहुंच पाते जिस के कारण आमदनी में कमी आती है, किन्तु स्वास्थ्य देखभाल पर खर्च बढ़ जाता है। गरीब अपनी तंगहाली के लिए अधिकतर बीमारी को कारण बताते हैं।¹⁶

शिक्षा के अभाव के कारण गरीबों का शोषण अधिक होता है। विश्व के कुल निरक्षर लोगों (39 करोड़) में से 45% अकेले बांग्लादेश, पाकिस्तान और भारत में हैं। इनमें 60% से अधिक महिलाएं हैं। पिछली सहस्राब्दि के अंत में भारत के 29 करोड़ लोग ऐसे थे जो लिख-पढ़ नहीं सकते थे। इनमें से 70% लोग केवल 10 राज्यों में केन्द्रित हैं—उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, बिहार, झारखंड, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल, आन्ध्रप्रदेश और महाराष्ट्र। दक्षिण एशिया में श्रीलंका एक मात्र ऐसा देश है जहाँ साक्षरता की दर 90% से अधिक है।¹⁷

इस बात के पुख्ता संकेत हैं कि गरीबी गहन होती जा रही है। 1997 में बोत्सवाना, केन्या, सिएरालियोन, वानूवातू, कैमरून, ज़िम्बाब्वे और जाम्बिया के मानव विकास सूचकांक में पिछले दशक की तुलना में इस दशक में बहुत अधिक कमी दर्ज हुई। यह सूचकांक आयु, प्रत्याशित आयु और साक्षरता पर आधारित है। केन्या में प्रत्येक 2 में से एक व्यक्ति गरीबी की रेखा से नीचे या 33 शीलिंग्स—प्रतिदिन एक डॉलर से भी कम आय पर गुज़र-बसर करता है। 1980 के दशक के मुकाबले यह स्थिति काफी बदतर है।¹⁸

वास्तव में असमानता की खाई बड़ी चिन्ताजनक ढंग से बढ़ रही है। विश्व की आय में दुनिया के सबसे गरीब बीस प्रतिशत लोगों की हिस्सेदारी मात्र 1.11 प्रतिशत है, जो 1960 के 2.3 प्रतिशत से भी नीचे चली गयी है। आज सबसे अमीर बीस प्रतिशत लोग सबसे गरीब बीस प्रतिशत लोगों के मुकाबले 78 गुणा अधिक अर्जित कर रहे हैं। 1960 में यह असमानता 30 गुणा थी। यहां तक कि धनवान राष्ट्रमंडल देशों में भी ऐसे आबादी-क्षेत्र हैं जिनमें गरीबी गहरी होती जा रही है। यह अल्पसंख्यकों के खिलाफ भेदभाव का नतीजा है।

हालांकि राष्ट्रमंडल के विकसित देश, उत्कृष्ट रिकार्ड वाले देशों में आते हैं, लेकिन उनमें आंतरिक असमानताएं मौजूद हैं। ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया में 13 प्रतिशत से अधिक आबादी गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करती है।¹⁹ कनाडा में गरीबों का अनुपात 17.6 प्रतिशत है²⁰ और राष्ट्रीय आय का 64 प्रतिशत हिस्सा जनसंख्या के सबसे अमीर 30 प्रतिशत लोगों के हाथ में है।²¹ श्रीलंका अपने दक्षिण



एशियाई पड़ोसी देशों से अधिक समृद्ध समझा जाता है, परंतु इस देश की कुल वार्षिक आमदनी के 40 प्रतिशत से अधिक हिस्से पर केवल 20 प्रतिशत सर्वाधिक अमीरों का कब्जा है।²²

समाज के सर्वाधिक कमजोर लोगों पर निगाह डालने पर गरीबी की विकटता और भी उजागर हो उठती है।

महिलाएं

राष्ट्रमंडल में गरीबी का अधिकतर बोझ महिलाएं और बच्चे सहते हैं। दुनिया भर में गरीबों में 70% महिलाएं हैं। निरक्षर लोगों में दो-तिहाई महिलाएं हैं।²³ अफ्रीका और एशिया में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की प्रत्याशित आयु कम है। यह तथ्य अन्य स्थानों की सामान्य प्रत्याशित आयु के संदर्भ में सामने आने वाले रुझान के ठीक उलट है। विकसित देशों में पुरुषों की तुलना में महिलाओं के 5 वर्ष अधिक जीवित रहने की संभावना रहती है, जबकि दक्षिण एशिया में महिलाओं की जीवित रहने की संभावना पुरुषों की तुलना में

सारणी 1 दक्षिण एशिया में लिंग समानता— एक नमूना²⁴

देश (वर्ष 2000)	प्रत्याशित आयु (वर्षों में)		शिशु मृत्युदर (प्रति 1000)		कुपोषित या कम भार वाले बच्चों ^d		बीच में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की दर (प्राथमिक) ^e		बीच में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की दर (माध्यमिक) ^e		प्रौढ़ निरक्षरता (आयु 15+)	
	पु	म	पु	म	पु	म	पु	म	पु	म	पु	म
बांग्लादेश	61	62	28 ^a	38 ^a	45.9%	49.8%	20%	30%	70%	85%	47.7%	70.1%
भारत	62	63	25	37	45.3%	48.9%	17%	29%	29%	52%	31.6%	54.6%
पाकिस्तान	62	64	उ.न.	उ.न.	38%	38.4%	उ.न.	75%	उ.न.	उ.न.	42.5%	72.1%
श्रीलंका	71	76	उ.न. ^b	उ.न. ^b	32%	33%	उ.न.	उ.न.	उ.न.	उ.न.	5.6%	11%
दक्षिण एशिया	36.7	24.8	62 ^c	63 ^c	44%	47%	उ.न.	उ.न.	उ.न.	उ.न.	33.9%	57.3%

पु : पुरुष म : महिला उ.न. : आंकड़े उपलब्ध नहीं a b c d e के लिए कृपया अंतिम टिप्पणी # 24 देखें

मात्र एक साल या कुछ अधिक है। स्कूल न जाने वाले बच्चों में 70 प्रतिशत लड़कियां हैं। कुपोषण और मृत्यु की दर लड़कों के मुकाबले लड़कियों में ऊंची है। (सारणी-1 देखें)

दक्षिण एशिया में गर्भवती महिलाओं (15 वर्ष से 49 वर्ष के बीच की आयु की) में 80 प्रतिशत खून की कमी से ग्रस्त हैं जिसके कारण शिशु-मृत्यु दर बढ़ जाती है और कम भार वाले बच्चों का जन्म होता है। बांग्लादेश में केवल 14 प्रतिशत महिलाओं को प्रसव के समय औपचारिक रूप से प्रशिक्षित दाइयों की सहायता मिल पाती है। (सारणी-2 देखें)

महिलाओं को अपने कौशल का विकास करने के अवसर बहुत कम मिल पाते हैं। देखभाल करने और घर चलाने में उनके योगदान का कोई मूल्य अदा नहीं किया जाता और उसे राष्ट्रीय सम्पदा में किए गए योगदान की मान्यता नहीं मिलती। घर से बाहर, महिलाओं को आमतौर पर समान कार्य के लिए कम पारिश्रमिक मिलता है; वे मुख्य रूप से निचले व्यवसायों/कार्यों तक ही अपने को सीमित पाती हैं। उन्हें घटिया या भय के माहौल में घंटों काम करना पड़ता है और अक्सर यूनियनों में उनकी संख्या न के बराबर होती है। उन्हें कोई कानूनी सुरक्षा नहीं मिल पाती। भेदभावपूर्ण कार्मिक कानूनों और रूढ़िवादी प्रथाओं के कारण गरीबी से छुटकारा पाने की महिलाओं की क्षमता में और भी बाधाएं पैदा होती हैं। अन्य बातों के अलावा, कई राष्ट्रमंडल देशों में आज भी ऐसी व्यवस्थाएं बरकरार हैं, जिनकी वजह से महिलाएं अपने को अक्षम पाती हैं, जैसे विरासत में समान भागीदारी न होना और महिलाओं के ऋण लेने पर रोक। कैमरून में,

सारणी 2 दक्षिण एशिया में महिलाओं की स्थिति²⁵

देश	प्रत्याशित आयु	प्रौढ़ निरक्षरता (15+)	श्रमिकों की भागीदारी	माता मृत्यु – दर (प्रति एक लाख जीवित जन्मों पर)	प्रशिक्षित स्वास्थ्य-कर्मियों द्वारा कराए गए प्रसव	खून की कमी से ग्रस्त महिलाएं	करीबी साथी द्वारा महिलाओं के प्रति हिंसा
बांग्लादेश	62 वर्ष	70.1%	42%	600 ¹	14%	53%	47% ²
भारत	63 वर्ष	54.6%	32%	440 ¹	49% ¹	88%	उ.न.
पाकिस्तान	64 वर्ष	72.1%	29%	200 ¹	40% ²	37%	उ.न.
श्रीलंका	76 वर्ष	11%	37%	60 ¹	95% ¹	उ.न.	उ.न.
दक्षिण एशिया	63 वर्ष	57.3%	33%	उ.न.	उ.न.	उ.न.	उ.न.

अन्यथा निर्दिष्ट को छोड़कर सभी आंकड़े सहस्राब्दि के अंत से सम्बद्ध हैं।

1. 1995 के आंकड़े

2. 1990 के आंकड़े

उ.न. : आंकड़े उपलब्ध नहीं

नियोक्ता किसी महिला को काम पर रखने से पहले उसके पति की सहमति की मांग करता है, क्योंकि वहां पति को वाणिज्यिक गतिविधियों में हिस्सा लेने से पत्नी को रोकने या पारिवारिक हित के आधार पर पत्नी को किसी अलग व्यवसाय में काम करने से इन्कार करने का अधिकार है।²⁶ गरीबी की वजह से महिलाएं और बालिकाएं वेश्यावृत्ति के लिए खरीद-फरोख्त का शिकार बनती हैं। हर महीने अकेले बांग्लादेश से व्यावसायिक यौनकर्मी अथवा घरेलू नौकरानी के रूप में काम करने तथा सस्ती मजदूरी के लिए 200 से 400 के बीच महिलाओं को भारत, पाकिस्तान और खाड़ी देशों में अवैध रूप से पहुंचाया जाता है।²⁷

अनेक देशों में महिलाओं पर व्यापक हिंसा जारी है। किन्तु, सार्वजनिक नीति निर्माताओं का पर्याप्त ध्यान इस ओर नहीं जाता। महिलाओं के सक्रिय राजनीतिक और सामाजिक जीवन पर इसके अनेक दुष्प्रभाव पड़ते हैं जिसका व्यापक रूप से अध्ययन हुआ है। दक्षिण एशिया में महिलाओं के प्रति हिंसा की शुरुआत स्त्री-भ्रूण हत्या या फिर रूढ़िवादी परिवारों में बेटे की चाहत के कारण जन्म के तत्काल बाद स्त्री-शिशु की हत्या से होती है। विश्व भर में महिलाओं की संख्या पुरुषों से ज्यादा है (प्रति 100 पुरुषों के मुकाबले 106 महिलाएं), किन्तु लिंग-अनुपात दक्षिण एशिया में गिर गया है, जहाँ 100 पुरुषों के मुकाबले 94 महिलाएं हैं, नतीजतन कुल मिलाकर 7.4 करोड़ “लापता महिलाएं” हैं (missing women)।²⁸ भारत में हर चार मिनट पर एक महिला अपराध का शिकार बनती है। इन अपराधों में 80% मामले बलात्कार, यौन शोषण, उत्पीड़न या दहेज संबंधी हत्याओं के होते हैं।²⁹ दक्षिण एशिया में हर साल कम से कम 5,000 महिलाओं की हत्या उनके परिवार के सदस्यों द्वारा कर दी जाती है, जिनमें से ज्यादातर हत्याएं बलात्कार से होने वाली बदनामी से बचने के लिए की जाती हैं (जो कई मामलों में किसी रिश्तेदार द्वारा किया जाता है।) अकेले पाकिस्तान में 1999 में 1000 महिलाओं को “बदनामी के डर” से मार दिया गया।³⁰ वंचित परिवारों की महिलाओं के अपने स्वास्थ्य के बारे में निर्णय करने पर ज़बरदस्त पाबंदी है। मामला चाहे सामान्य बीमारी के उपचार का हो या प्रजनन स्वास्थ्य से संबंधित, जैसे विवाह या बच्चों के बीच अन्तर रखने का, सभी मामलों में महिलाओं पर अंकुश लगाए गए हैं। अपने शरीर से संबंधित मामलों पर कम नियंत्रण होने के कारण, महिलाओं को एच.आई.वी. संक्रमण की आशंका अधिक होती है अथवा गरीबी उन्हें ऐसी स्थितियों में धकेल देती है जहाँ एच आइ वी/एड्स का जोखिम बहुत अधिक होता है। अफ्रीका में एच.आई.वी. संक्रमित लोगों में आधे से अधिक महिलाएं हैं। इस संबंध में दक्षिण एशिया का दूसरा स्थान है जहाँ इस विषाणु से संक्रमित लोगों में 36 प्रतिशत महिलाएं हैं।³¹

बच्चों

बच्चों की आवश्यकताओं के स्वरूप और विस्तार के मद्देनज़र उनके अधिकारों के हनन की संभावना बहुत ज्यादा होती है। दुनिया के उन 120 करोड़ लोगों में बच्चों की संख्या आधे से अधिक है जिन्हें 1 अमेरिकी डॉलर से भी कम आमदनी में गुज़ारा करना पड़ता है।

केवल जब असहनीय हो जाये

नामीबिया में हर घंटे एक महिला के साथ बलात्कार होता है और वह एच आई वी/एड्स के मामलों में सर्वाधिक वृद्धि दर वाले देशों में से एक है। वहां बलात्कार के खिलाफ सबसे प्रगतिशील और व्यापक कानून पारित किया गया। लेकिन यह बिना संघर्ष के संभव नहीं हुआ। पति द्वारा किए गए बलात्कार के मुद्दे पर आपत्ति करते हुए साउथ वेस्ट अफ्रीकन पीपल्स आर्गनाइजेशन (स्वापो) के महासचिव ने कहा कि पीड़ित महिला को पुलिस में शिकायत तभी दर्ज करानी चाहिए जब दुर्व्यवहार असहनीय हो जाये। नए 'कम्बैटिंग ऑव रेप ऐक्ट' यानी बलात्कार रोकथाम अधिनियम के तहत ऐसा व्यक्ति बलात्कार का दोषी माना जायेगा जो "ज़ोर-ज़बरदस्ती की परिस्थितियों" में किसी अन्य व्यक्ति के साथ यौन दुष्कर्म करेगा या ऐसा दुष्कर्म करने के लिए किसी को मदद पहुंचायेगा। बलात्कार की इस व्यापक परिभाषा में "ज़ोर-ज़बरदस्ती की परिस्थितियों" की बात की गई है जिनमें शारीरिक बल प्रयोग, धमकी, पीड़ित व्यक्ति का शारीरिक दृष्टि से अपंग या असहाय होना और मादक द्रव्यों के कारण मानसिक रूप से अक्षम होना जैसी स्थितियां शामिल हैं। यदि अपराधकर्ता की आयु 3 वर्ष से अधिक हो और पीड़ित व्यक्ति की आयु 14 वर्ष से कम हो, तो "ज़ोर-ज़बरदस्ती की परिस्थितियां" समझी जायेंगी और ऐसे में अधिक दंड दिया जायेगा। लगातार किए गए अपराधों के लिए दंड बढ़ता जायेगा। दंड की कठोरता निम्नांकित बातों पर निर्भर करेगी : पीड़ित व्यक्ति की आयु; संरक्षक द्वारा बलात्कार, अधिकारी या आश्रयदाता द्वारा बलात्कार, सामुहिक बलात्कार करना; अथवा बलात्कार करने वाले को इस बात का ज्ञान होना कि उसे यौन संबंध से संचारित होने वाली कोई बीमारी है। केवल नाबालिक अथवा "अत्यंत बाध्यकारी परिस्थितियां" होने की स्थिति में ही सजा कुछ कम हो सकती है। बेजोड़ बात यह है कि विवाह अथवा कोई अन्य संबंध होने पर भी बलात्कारी को किसी प्रकार की छूट नहीं दी जा सकती। उसे बलात्कार का दोषी ठहराया जा सकता है। पीड़ित व्यक्ति के पक्ष में इस अधिनियम में मानसिक आघात को साक्ष्य मानने और जमानत संबंधी सुनवायी के समय हस्तक्षेप करने के अधिकार की अनुमति प्रदान की गई है। इसमें आरोप के संबंध में सावधानी बरतने संबंधी वैधानिक चेतावनी (केविएट) हटा दी गई है; शिकायतकर्ता की यौन प्रतिष्ठा को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है, और सुनवाई के समय लोगों तथा मीडिया की पहुंच पर रोक लगा दी गई है।³²

दक्षिण एशिया में 80% बच्चे कुपोषण से पीड़ित हैं और भारत में तीन-चौथाई बच्चे खून की कमी का शिकार हैं।³³ गरीब परिवारों में पैदा होने वाले बच्चों के कुपोषण और अवरुद्ध-विकास का शिकार होने का जोखिम अधिक रहता है, जबकि समाज के समृद्ध वर्गों में 5 वर्ष से कम आयु में गिने-चुने बच्चे ही मौत का शिकार होते हैं (सारणी-3 देखें)। विश्वभर में 30 लाख से अधिक बच्चों की मृत्यु पानी से होने वाली बीमारियों के कारण हो जाती है जबकि भारत में दस्त लगने से प्रति पांच बच्चों में से एक की मौत हो जाती है।³⁴

सारणी-3 दक्षिण एशिया में बच्चों की स्थिति- अभाव और समृद्धि का असर³⁵

देश	प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मी द्वारा प्रसव कराना		शिशु मृत्यु (प्रति हज़ार जन्म पर)		5 वर्ष से कम आयु वर्ग में मृत्युदर (प्रति हज़ार जन्म)		बाल कुपोषण (5 वर्ष से कम आयु)		अवरुद्ध विकास से ग्रस्त बच्चे	
	सबसे गरीब 20%	सबसे अमीर 20%	सबसे गरीब 20%	सबसे अमीर 20%	सबसे गरीब 20%	सबसे अमीर 20%	सबसे गरीब 20%	सबसे अमीर 20%	सबसे गरीब 20%	सबसे अमीर 20%
बांग्लादेश (1996-97)	14.3%	58.6%	96.3	56.3	141.1	76.0	60%	28%	50.5%	23.5%
भारत (1992-93)	24.5%	88.6%	109.2	44	154.7	54.3	60%	34%	55.6%	30.9%
पाकिस्तान (1990-91)	4.6%	55.2%	88.7	62.5	124.5	73.8	26%	54%	61.1%	32.9%
श्रीलंका (1996)	उ.न.	उ.न.	19 (समग्र)		उ.न.	उ.न.	33%(समग्र)		उ.न.	उ.न.



दियासलाई से खेलना

भारत में तमिलनाडु में सिवकासी शायद बाल मज़दूरी का ऐसा गढ़ है जिसके बारे में सर्वाधिक फिल्माया जा चुका है, लिखा जा चुका है और काफी अनुसंधान किया जा चुका है। सब जानते हैं कि दियासलाई और पटाखे के बनाने का व्यवसाय कितना जोखिम भरा है और वहां कितना शोषण है। यह 45,000 ऐसे बच्चों के कंधों पर चल रहा है जिन्हें एजेंटों और फैक्टरी मालिकों द्वारा उनके माता-पिता को दिए गए पूर्व ऋणों के बदले बंधक रखा गया है।

हर रोज़ साढ़े तीन साल से लेकर 15 वर्ष तक की आयु के बच्चों को गांवों से तड़के 3 बजे फैक्टरी बसों में भरकर लाया जाता है। यूनिसेफ (United Nations Children's Fund) द्वारा किए गए एक अध्ययन में 33 बसों का सर्वेक्षण करने के बाद यह पाया गया कि एक बस में 150 से 200 बच्चे तक भरे गए थे। इन बच्चों को अगले 12 घंटे तक फैक्टरी के अंधेरे और दूषित वातावरण में काम करना होता है और शाम को 7.00 बजे के बाद ही गांवों में उनकी वापसी होती है। दीपावली त्यौहार की तैयारी के दौरान फैक्ट्रियों में देर रात तक और सप्ताह में सातों दिन काम बच्चे करते हैं। बच्चे भारी मात्रा में पटाखों को रोल और पैक करते हैं। बारूद क्षयकारक होता है और कुछ समय के अंतराल के बाद बच्चे की उंगलियों की त्वचा गला देता है। छाले पड़ जाते हैं और बच्चा काम नहीं कर पाता क्योंकि उसके घावों पर रसायन पड़ने से तेजी से जलन होती है। फफोले 5 या 6 दिन में ठीक होते हैं, लेकिन इतने दिन तक गैरहाजिरी का अर्थ है काम से छुट्टी। इसलिए, आमतौर पर गर्म कोयला या जलती सिगरेट का सिरा लगाकर फफोले को फोड़ा जाता है और घाव को जलाया जाता है। कुछ समय बाद बच्चों की उंगलियों पर अनेक दाग बन जाते हैं। पोटेशियम क्लोरेट, फास्फोरस और जिंक ऑक्साइड का चूर्ण उनके फेफड़ों में भर जाता है, जिससे उन्हें सांस की बीमारियां होती हैं। बच्चे जब तक इतने बीमार नहीं हो जाते कि काम न कर सकें, तब तक उन्हें काम पर रखा जाता है। परिवार और उसी का एक और बच्चा ऋण चुकाने के लिए उसी काम पर लगाया जाता है।

विश्वभर में 13 करोड़ बच्चों की पहुंच प्राथमिक स्कूल तक नहीं है और इनमें से करीब आधे बच्चे राष्ट्रमंडल देशों में रहते हैं।³⁶ दक्षिण एशिया में प्राथमिक विद्यालयों में दाखिला लेने वाले 45% से अधिक बच्चे पाँचवीं कक्षा तक नहीं पहुंच पाते। पाकिस्तान में दो-तिहाई से अधिक लड़कियाँ प्राथमिक शिक्षा के लिए दाखिला लेती हैं, किन्तु उनमें से केवल 40% स्कूली शिक्षा जारी रख पाती हैं। पाकिस्तान में महिला साक्षरता की दर 32.6% है जो इस क्षेत्र में सबसे कम है।³⁷ सामान्य सामाजिक और नैतिक उपेक्षा की वजह से बच्चे अक्सर शोषण और गरीबी का शिकार होते हैं। दक्षिण एशियाई राष्ट्रमंडल देशों में श्रमिकों में बढ़ी संख्या बाल मजदूरों की है। इस क्षेत्र में और साथ ही अफ्रीकी उप-सहारा क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा की चुनौतियाँ भी सबसे अधिक हैं। हालांकि सही-सही आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु अनुमान है कि भारत, बांगलादेश और पाकिस्तान में 10-14 वर्ष के आयु-समूह के 12-28% बच्चों का बचपन बाल-मजदूरी में व्यतीत होता है।³⁸

गरीबी और असमानता मनुष्य की, विशेषकर महिलाओं और बच्चों की, तस्करी के मूल कारण हैं। इनके अवैध व्यापार की आशंका देश के भीतर और सीमा पार, दोनों ही स्थानों पर अधिक रहती है। दक्षिण एशिया इस दृष्टि से प्रमुख क्षेत्र है जहाँ से सबसे अधिक तस्करी होती है। बांगलादेश, भारत, मोज़ाम्बीक, नामीबिया, पाकिस्तान, दक्षिण अफ्रीका, श्रीलंका, नाइजीरिया और ज़ाम्बिया में मजदूरी और यौन-व्यापार के लिए बच्चों की निरन्तर तस्करी होती है। बालिकाएँ तस्करी का शिकार सबसे अधिक बनती हैं। दक्षिण एशिया में देह-व्यापार में लगी औरतों में करीब 60% नाबालिग लड़कियाँ हैं। भारत, पाकिस्तान और संयुक्त अरब अमीरात में 1990 के दशक में करीब 6 लाख बांगलादेशी महिलाओं और बच्चों का अवैध व्यापार किया गया। तस्करी महिलाओं की हो या बच्चों की – गुलामी का संकेत है क्योंकि यह बंधुआ मजदूरी का संकेत है और अनेक बच्चे तथा वयस्क बंधुआ बनाए जाते हैं। एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रमंडल देशों में यह उत्पीड़न सबसे अधिक है। अनुमान है कि 2.7 करोड़ बंधुआ मजदूरों में से 1.5 से 2.0 करोड़ के बीच भारत, पाकिस्तान और नेपाल में हैं।

दक्षिण एशिया में गरीबी अनेक बच्चों को स्कूल से बाहर रखने में कामयाब रही है और उन्हें परिवार के गुज़र-बसर के लिए पैसे कमाने पर मजबूर कर देती है। सभी दक्षिण एशियाई देशों ने बच्चों के अधिकारों से संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की पुष्टि की है, किन्तु इससे इस क्षेत्र में शोषित बच्चों की हालत में कोई बदलाव नहीं आया है। श्रीलंका में 5 से 17 वर्ष की आयु के करीब 10 लाख अथवा 21% बच्चे मजदूरों में शामिल हैं। ऐसा इस तथ्य के बावजूद है कि श्रीलंका मजदूर की न्यूनतम आयु के बारे में आई एल ओ समझौते (1973) की पुष्टि कर चुका है। भारत में केन्द्र और राज्यों द्वारा बाल मजदूरी समाप्त करने या कम से कम बाल मजदूरी को नियंत्रित करने के लिए 250 से अधिक कानून बनाए जा चुके हैं। किन्तु इनके बावजूद पिछली सहस्राब्दि के अंत तक भारत में 2 करोड़ बाल मजदूर थे। इस तथ्य को स्वयं सरकार ने स्वीकार किया था।³⁹ अन्य अनुमानों के अनुसार यह संख्या 7-8 करोड़ की है, जो





उन बच्चों की संख्या से मेल खाती है, जिन्होंने स्कूल छोड़कर असंगठित क्षेत्र में मजदूरी करना आरम्भ कर दिया है।⁴⁰ भारत को अभी बाल मजदूरी के सबसे बुरे रूपों को समाप्त करने के लिए निषेध एवं तत्काल कार्रवाई से संबंधित 1999 के आई.एल.ओ. समझौते की पुष्टि करनी है। बांग्लादेश में कपड़ा और चमड़ा उद्योग में 60 लाख से अधिक बाल मजदूर काम कर रहे हैं। चर्मशोधक कारखानों में लगे कुल श्रमिकों में एक चौथाई 10–15 वर्ष की आयु के बताए गए हैं।⁴¹ पाकिस्तान में 33 लाख बाल मजदूर हैं जिनमें से अधिकतर खेतों, खानों और व्यापार तथा परिवहन सेवाओं में लगे हुए हैं। इन बच्चों में से एक तिहाई ऐसे हैं जो वयस्कों से अधिक समय तक काम करते हैं। उनमें से 25% बाल मजदूरी सप्ताह में 8 घंटे प्रतिदिन से ज्यादा काम करते हैं (वयस्क श्रमिक सप्ताह में औसतन 35 घंटे काम करते हैं, जबकि बच्चों को 56 घंटे से अधिक काम करना पड़ता है।)⁴² अत्याधिक कठोर श्रम और उससे उपजी बीमारियाँ इन बाल श्रमिकों की शक्ति को उनके जवान होने से पहले ही निचोड़ देती हैं। इससे वे जीवनभर के लिए गरीबी के गर्त में गहरे धंसे जाते हैं। इन तीनों देशों में से किसी भी देश ने बाल मजदूरी को गैर-कानूनी घोषित करने वाले आई.एल.ओ. के न्यूनतम आयु समझौते (1973) पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं।

दासता को बढ़ावा देने और उसे बरकरार रखने वाली ताकतें इतनी मजबूत हैं कि बहुत कम राष्ट्र या अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियाँ ही उनका मुकाबला कर सकती हैं। भारत और पाकिस्तान में ऋण-गुलामी के खिलाफ ज़ोरदार कानून हैं। पाकिस्तान में स्वयंसेवी संगठनों द्वारा हालांकि सैकड़ों मामले प्रकाश में लाए गए, लेकिन किसी को भी दोषी नहीं ठहराया गया। अगर बंधुआ मजदूरों को मुक्त करा भी लिया

दौड़ का मनोरंजन⁴³

पाकिस्तान, भारत और बांग्लादेश से खाड़ी के अमीर देशों में मनोरंजन के लिए बच्चे भेजे जाते हैं जो ऊंट-दौड़ में जॉकी यानी सवार का काम करते हैं। अधिकतर मामलों में सम्बद्ध श्रम कानून लागू नहीं किये जाते क्योंकि, बच्चों का इस्तेमाल करने वाले और दौड़ में हिस्सा लेने वाले ऊंटों के मालिक स्थानीय प्रभावशाली परिवारों से होते हैं और इसलिए दरअसल कानून से ऊपर भी।⁴⁴ पुलिस जांच करती है, लेकिन स्पष्ट सुबूत के बावजूद कभी किसी के खिलाफ कोई आरोप दर्ज नहीं किया जाता।

संगठित गिरोहों द्वारा छोटे बच्चों की तस्करी की जाती है। बहुत छोटे बच्चे, यहां तक कि 5 या 6 साल के बच्चों को वरीयता दी जाती है क्योंकि वे बहुत हल्के होते हैं। छोटे बच्चों का कभी-कभी अपहरण किया जाता है, लेकिन अक्सर उन्हें माता-पिता या संबंधियों द्वारा बेच दिया जाता है अथवा बेहतर घर या घरेलू कार्य दिलाने के बहाने उन्हें फुसलाया जाता है। परिवार से अलग, एक ऐसे देश में जहां लोग, संस्कृति और भाषा सब कुछ अनजान हो, अधिकतर बच्चे यातना और शोषण की घटनाओं की रिपोर्ट करने की स्थिति में नहीं होते। बचाये गये कुछ गिने-चुने बच्चों की आपबीती से बड़ा क्रूर दृश्य उभरता है। बच्चों का वजन कम से कम रखने के लिए दौड़ से पहले उन्हें भूखा रखा जाता है या बहुत कम भोजन दिया जाता है। उन्होंने बताया कि दौड़ प्रतियोगिताओं के दौरान हर रोज़ पिटाई और गम्भीर रूप से घायल होना आम बात है। भयभीत बच्चों को ऊंट की कमर पर बांध दिया जाता है और उनकी चीखों से दर्शक रोमांचित होते हैं। अगस्त 1999 में बांग्लादेश से एक 4 वर्षीय ऊंट सवार संयुक्त अरब अमिरात के रेगिस्तान में पड़ा मिला। वह मौत से जूझ रहा था। मई 2000 में एक मालिक ने दौड़ में अच्छा प्रदर्शन न करने के लिए बांग्लादेश के चार वर्षीय ऊंट सवार की टांगे जला डाली थीं। बच्चों को बेचे जाने, उनके दुरुपयोग, उनसे संबंधित अश्लील टिप्पणियों के बारे में संयुक्त राष्ट्र की विशेष रिपोर्ट में कहा गया है कि अल्पायु के बच्चों को ऊंट दौड़ में जॉकी के रूप में इस्तेमाल करने पर रोक लगाने की दिशा में कुछ भी नहीं किया गया है। इससे संकेत मिलता है कि "नियमों की निर्ममता से अनदेखी की जाती है।"

ऊंट-दौड़ जैसी चीजों के लिए बच्चों के इस्तेमाल पर " बाल अधिकारों से सम्बद्ध संयुक्त राष्ट्र समझौते " और " बाल मजदूरी के सबसे बुरे रूपों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन समझौते " के तहत रोक लगाई गयी है। दासता, बंधुआ मजदूरी, दुरुपयोग, अश्लील कार्यों, सशस्त्र संघर्ष में बच्चों के जबरन इस्तेमाल, मादक पदार्थों की तस्करी और अन्य अवैध गतिविधियों में बच्चों को लगाने तथा 18 वर्ष से कम आयु के लड़कें-लड़कियों को उनके स्वास्थ्य, सुरक्षा या नैतिकता की दृष्टि से हानिकारक किसी भी कार्य में इस्तेमाल करने पर रोक लगाने के लिए यह समझौता तत्काल और कारगर ढंग से लागू करने की आवश्यकता है।

भले ही अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सदस्य देशों ने अभी तक 182वें समझौते की पुष्टि न की हो, भले ही वे इसके प्रत्येक प्रावधान के पालन के प्रति वे बाध्य न हों, तब भी उन्हें बाल मजदूरी को प्रभावी रूप से समाप्त करने की दिशा में नीतियाँ बनानी चाहिए। अगस्त 2001 तक भारत और पाकिस्तान ने "बाल मजदूरी के सबसे बुरे रूपों से संबंधित समझौते" की पुष्टि नहीं की थी।⁴⁵





जाये तो इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि वे मुक्त रह पायेंगे। 1998 में सिंध में एक ज़मींदार ने 150 हथियारबंद लोगों की मदद से महिलाओं और बच्चों सहित उन 87 बंधुआ मजदूरों को फिर से अपने कब्जे में ले लिया जिन्हें हाल ही में आंदोलनकारियों ने मुक्त कराया था। वह उन मजदूरों को लेकर तीन ज़िलों और कई पुलिस चौकियों को पार करने में सफल रहा और अधिकारियों ने उसे नहीं रोका।⁴⁶ अनुमान है कि पाकिस्तान में 10 लाख से अधिक बंधुआ मजदूर अकेले कृषि क्षेत्र में कार्यरत हैं।⁴⁷

भारत में केन्द्र सरकार की वचनबद्धता राज्य स्तर पर कार्यरूप न ले पाने के कारण विफल हो जाती है। मजदूरों को बंधक रखने वाले लोगों को पुलिस छापा पड़ने की सूचना पहले ही मिल जाती है और बंधुआ मजदूरी से मुक्त कराए गए मजदूरों के लिए जारी पुनर्वास अनुदान तत्काल उन तक नहीं पहुंचता या उन्हें कभी नहीं दिया जाता जिससे वे फिर से गुलामी कुबूल कर लेते हैं। महिलाओं को ऋण-बंधक होने के दबाव में शादी करनी पड़ती है और ऋण दो-तीन पीढ़ी तक चलता रहता है क्योंकि ऋणदाता कर्ज के हिसाब में गड़बड़ियां करता है। वह कर्ज वसूल करने के लिए कर्जदारों के बच्चों को भी बंधक बना लेता है और उन्हें बेच भी देता है।

लम्बी अवधि के सशस्त्र संघर्ष में बाल-सैनिकों का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है। युद्ध में बच्चे बड़े सस्ते और सहज सुलभ होते हैं। उनकी अकल्पनीय वफादारी के साथ उन्हें “कारगर संहारकों” के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। लड़के और लड़कियों दोनों की भर्ती की जाती है। लड़कियां अक्सर युद्ध शिविरों में रुकती हैं और यौनदासियों के रूप में इस्तेमाल की जाती हैं। कभी-कभी उन्हें भी “पीठ पर शिशुओं को बांधें” जबरन लड़ाई में भेजा जाता है।⁴⁸

‘कोआलिशन टू स्टॉप द यूज़ ऑफ चाइल्ड सॉल्जर्स’ नामक संगठन के अनुसार कई देशों में सरकारों द्वारा बच्चों की अनिवार्य सैन्य भर्ती होती है या फिर विद्रोहियों द्वारा सरकार के खिलाफ लड़ने के लिए उनका अपहरण किया जाता है। संगठन का निष्कर्ष है कि 41 देशों में करीब 3,00,000 बच्चे, जिनमें कुछ तो मात्र 7 वर्ष की आयु के हैं, सक्रिय रूप से युद्ध में लगे हैं, जबकि करीब 5,00,000 बच्चों को अर्धसैनिक संगठनों, गुरिल्ला समूहों और सिविल मिलिशिया द्वारा भर्ती किया गया है। श्रीलंका में बाल सैनिकों की सही-सही संख्या ज्ञात नहीं है, किन्तु अनुमानों के अनुसार विद्रोही समूहों की कुल संख्या में करीब 20 प्रतिशत बच्चे शामिल हैं। कुछ विद्रोही समूह तो 12 वर्ष तक की अत्यायु के बच्चों को सुरक्षा बलों के खिलाफ युद्ध में इस्तेमाल करते हैं, हालांकि इन समूहों द्वारा बच्चों और सशस्त्र संघर्ष से सम्बद्ध संयुक्त राष्ट्र महासचिव के विशेष प्रतिनिधि को यह आश्वासन दिया गया था कि वे ऐसा नहीं करेंगे।⁴⁹

श्रीलंका में जातीय संघर्ष के शिकार बने बच्चे⁵⁰

- सहस्राब्दि के अन्त में 2,70,000 से अधिक बच्चे विस्थापित हो चुके थे।
- हर 12 महीनों में अनाथालयों में आने वाले बच्चों की संख्या दोगुनी हो जाती है।
- अनुमान है कि श्रीलंका के उत्तरी और पूर्वी हिस्सों में 20-50% विद्यार्थियों को स्कूल छोड़ने और विद्रोही बलों में शामिल होने के लिए मजबूर किया जाता है।

मूलनिवासी (जनजातीय लोग)

दुनिया के 25 करोड़ जनजातीय या मूलनिवासी लोगों में से करीब 10 करोड़ राष्ट्रमंडल देशों में हैं। 1984 में संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन की रिपोर्ट में जनजातीय लोगों के प्रति वर्तमान भेदभाव और उनकी दयनीय स्थिति को दर्शाया गया था। इसमें सार रूप में कहा गया था कि जनजातीय लोगों के प्रति जारी भेदभाव से उनका अस्तित्व खतरे में पड़ गया है।⁵¹

चाहे वे कहीं के भी हों, आस्ट्रेलिया में अबोरिजिन्स से लेकर बेलिज़ में अमेरिन्डियन्स तक, बांग्लादेश में जुम्मा से लेकर कनाडा में इन्नु तक, भारत में आदिवासियों से लेकर मलेशिया में ओरांग अस्ली तक और दक्षिण अफ्रीका में बुशमैन से लेकर युगांडा में इक तक, सभी इन्डिजिनेस लोगों को भेदभाव, असहिष्णुता और द्वेष का सामना करना पड़ता है। उन्हें अपना अस्तित्व और पहचान बनाए रखने के लिए मजबूरन संघर्ष करना पड़ रहा है।



दुनिया भर में जनजातीय लोगों को गरीबी, अस्वस्थता, शिक्षा के अभाव, आवास की कमी, प्राकृतिक संसाधनों पर अपर्याप्त नियंत्रण, राजनीति में निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रतिनिधित्व के अभाव और जीविका के अनेक पहलुओं के लिए सरकारी संस्थानों पर भारी निर्भरता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आस्ट्रेलिया में जनजातीय लोगों में अन्य लोगों के मुकाबले शिशु-मृत्युदर 2 से 4 गुणा और वयस्क मृत्युदर 3 से 4 गुणा अधिक है। अनेक देशों में इन लोगों को सर्वाधिक निचले पदों पर रखा जाता है जहां तरक्की की संभावनाएं नहीं होती, या अधिक सम्मानित और अधिक वेतन वाले पद उन्हें नहीं सौंपे जाते। भारत में बंधुआ श्रम उन्मूलन अधिनियम, 1976 के बावजूद बड़ी संख्या में आदिवासियों/जनजातीय समुदायों के लोग बंधुआ मजदूरी के लिए अभिशप्त हैं। उदाहरण के तौर पर, आस्ट्रेलिया में अबोरिजिनेस में 23 प्रतिशत बेरोजगारी है, जबकि बेरोजगारी की राष्ट्रीय औसत 7 प्रतिशत है।⁵²

सारणी 4 गरीबी का तुलनात्मक स्तर : आदिवासी और अन्य ग्रामीण क्षेत्र (प्रतिमाह रुपये 225 से कम में गुजर-बसर करने वाले व्यक्ति) ⁵³					
राज्य	आदिवासी	अन्य *	राज्य	आदिवासी	अन्य *
आन्ध्रप्रदेश	20.3%	3.6%	मध्यप्रदेश + छत्तीसगढ़	24%	4.9%
असम	4%	6.8%	महाराष्ट्र	19.2%	4.1%
बिहार+ झारखंड	22%	6.5%	उड़ीसा	34%	5.2%
गुजरात	8.7%	1.2%	राजस्थान	2.9%	0.4%
कर्नाटक	14.3%	4.2%	तमिलनाडु	19.2%	2.9%
केरल	12%	0.7%	उत्तरप्रदेश + उत्तरांचल	3.4%	3.7%
			पश्चिम बंगाल	10%	8.6%

* इस श्रेणी के अर्न्तगत अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़े वर्ग शामिल नहीं हैं, लेकिन ऊंची जातियाँ, मुसलमान, ईसाई, सिख, और अन्य धार्मिक समूह शामिल हैं।

विश्व के अधिकतर आदिवासी लोग भारत में बसे हुए हैं (8 करोड़ से अधिक)। भारत इन्डिजिनेस पीपल्स की धारणा को मान्यता नहीं देता क्योंकि जनजातीय समूह देश के भीतर ही हैं। किन्तु, संविधान में उनकी ऐतिहासिक उपेक्षा को मान्यता दी गई है और उनकी भूमि, संस्कृति और भाषा की सुरक्षा करने और उनका राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के प्रावधान किए गए हैं। इसके अलावा, उनके अधिकारों और उन पर अमल; विकास योजनाओं, वित्तीय आवंटनों, शिक्षा और रोजगार की रचनात्मक कार्यनीति तथा उनकी भाषा के विकास और संस्कृति की सुरक्षा पर निगाह रखने के लिए निगरानी तंत्र भी कायम किया गया है। इस सबके बावजूद जनजातीय समूह समाज के सबसे पिछड़े तबकों में शामिल हैं (सारणी-4 और 5 देखें)। कल्याण योजनाओं पर अमल में अत्याधिक गिरावट आई है और जनजातीय लोगों के लाभ अक्सर बीच में ही हड़प लिए जाते हैं। खरीदे गए नेता, कमजोर राजनीतिक इच्छाशक्ति, अज्ञानता और भ्रष्टाचार, गरीबी और अपने हितों की रक्षा के लिए एकजुटता के अभाव के कारण कानूनी और संवैधानिक ढांचा विफल हो जाता है।

शिक्षा में मौजूद असमानता से पता चलता है कि जनजातीय लोगों को कम अवसर उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, भारत में 1991 के आंकड़ों के अनुसार 23.03 प्रतिशत जनजातीय/आदिवासी साक्षर थे, जो राष्ट्रीय साक्षरता औसत - 52.21% - से बहुत कम है। आदिवासी महिलाओं में तो साक्षरता और भी कम, मात्र 14.5% ही है, जो महिलाओं की राष्ट्रीय साक्षरता औसत (39.29 प्रतिशत) का करीब एक-तिहाई है। आधे से भी कम (46%) आदिवासी बस्तियों में प्राथमिक विद्यालय है। अधिकतर राष्ट्रीय शैक्षणिक कार्यक्रमों और पाठ्यक्रमों से जनजातीय लोगों की सांस्कृतिक पहचान के लिए खतरा

सारणी 5 भारत में सामाजिक असमानता का प्रभाव ⁵⁴		
	अनुसूचित जनजातियां	भारत(समग्र)
शिशु-मृत्युदर (प्रति 1000)	84.2	70
बाल-मृत्युदर (प्रति 1000)	126.6	94.9
कम वज़न के बच्चे	55%	47%



प्रगति— एक नमूना

- जनजातीय विकास कार्यक्रमों के पांच दशक पूरे होने के बाद भी मध्यप्रदेश और राजस्थान में सहरिया जनजाति के 2 लाख के समुदाय में 1% से भी कम लोग साक्षर हैं।
- झारखंड और बिहार तथा उड़ीसा के निकटवर्ती जिलों में 92% आदिवासी आधिकारिक तौर पर गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं।
- उत्तरपूर्व भारत में विभिन्न जातीय समूहों के 1.5 लाख लोगों को सरकार और उग्रवादी संगठनों के बीच संघर्ष के कारण अपने घरों से विस्थापित होने और शरणार्थियों के रूप में रहने के लिए मजबूर होना पड़ा है।
- भारत सरकार ने एक करोड़ से अधिक आदिवासियों को वनभूमि पर अवैध 'कब्जाधारी' करार कर उन्हें उनके परंपरागत आवास से हटाने की योजना बना रही है।
- श्रीलंका में वन्नियाला -ऐत्तो (वेड्डा), जिन्हें मदुरा ओया नेशनल पार्क बनाने के लिए उनके परंपरागत आवास से सुरक्षित स्थानों पर बसाया गया था, अब धीरे-धीरे अपनी सांस्कृतिक पहचान खो रहे हैं।
- गयाना में अमेरिंडियन्स को अपनी परंपरागत भूमि के बीच बनायी जा रही सड़क के निर्माण को रुकवाने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ रहा है।
- बेलिज़ में माया जनजाति के लोग लक्कड़ कम्पनियों की लूटमार से बरसाती वनों को बचाने और अपने भू-अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे हैं।
- बोत्स्वाना में बसर्वा/बुशमैन और बाक्गालागादी लोगों को संरक्षण, पर्यटन और हीरों के खनन के लिए सेंट्रल कालाहारी गेम रिजर्व से बेदखल किया गया और अब उन्हें भेदभाव, तकलीफों और यातनाओं का सामना करना पड़ रहा है। क्योंकि वे अपनी पुश्तैनी भूमि पर बने रहने के अधिकार के लिए संघर्ष कर रहे हैं।
- आस्ट्रेलिया के उत्तरी भू-भाग में मिरर लोग काकाडू नेशनल पार्क में जाबिलुका में यूरेनियम के खनन का कड़ा विरोध कर रहे हैं।

बढ़ता जा रहा है, क्योंकि उनमें उनकी विशेष जरूरतों का ध्यान नहीं रखा जाता। बोत्स्वाना में बासर्वा/बुशमैन बच्चों को उनकी भाषाओं में शिक्षा नहीं दी जाती। कनाडा में इन्नू बच्चों की शिक्षा में मुख्य धारा के इतिहास की जो व्याख्या शामिल है वह उनके अपने इतिहास से काफी अलग है। मानक स्कूली पाठ्यपुस्तकों में जनजातीय लोगों के सांस्कृतिक तौर-तरीकों के बारे में ज्ञान अथवा संवेदना का अभाव है। इन लोगों की भाषा और सांस्कृतिक इतिहास का ज्ञान रखने वाले शिक्षकों का अभाव होने से समस्या और भी जटिल हो जाती है।

समकालीनयुग में, वैश्वीकरण की प्रक्रिया से खतरा और भी बढ़ गया है, जिसमें वनों, खनिजों और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की तलाश के लिए बाज़ार की सीमाओं का विस्तार हो रहा है। जिस वातावरण में मूलनिवासी लोग और जनजातीय समूह रहते हैं, उसका ह्रास हो रहा है और वनों की कटाई, खनिजों के दोहन, बांधों के निर्माण, हथियार परीक्षण रेंजों और ऐसे ही अन्य कारणों से उसमें व्यवधान पैदा हो रहे हैं। हालांकि वे संसाधन-संपन्न क्षेत्रों में रह रहे हैं, लेकिन इन संसाधनों के दोहन से जनजातीय लोगों को कुछ भी प्राप्त नहीं होता-समूचा लाभ घरेलू अभिजात वर्ग और अंतर्राष्ट्रीय निगमों (trans-national corporations) के हिस्से में चला आता है। अनेक राष्ट्र और उनके अभिजात वर्ग,

उपेक्षा से बढ़ता जोखिम⁵⁵

निराशा के वातावरण में हानिकारक बर्ताव बढ़ता है। आस्ट्रेलिया में लम्पट पुरुषों और वेश्याओं में यौन संचारित संक्रमणों (इन्फेक्शन्स) का खतरा जहां कुल मिलाकर कम हुआ है, वहीं जनजातीय आबादी में इस खतरे में बेतहाशा बढ़ोतरी हुई है," 100 में से 10 व्यक्तियों में यह संक्रमण पाया गया है। इसके बावजूद आस्ट्रेलिया में सरकार प्रत्येक अबोरिजिनल यानी जनजातीय व्यक्ति के स्वास्थ्य पर गैर जनजातीय व्यक्ति की तुलना में बहुत कम धन खर्च करती है। 1998 में जनजातीय लोगों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं पर लगभग 63 सेंट्स प्रति व्यक्ति खर्च किए गए, जबकि अन्य आस्ट्रेलियाई लोगों के लिए 1 डॉलर प्रति व्यक्ति खर्च किया गया और जनजातीय लोगों के लिए सांस्कृतिक दृष्टि से स्वीकार्य और कारगर सेवाओं पर 63 सेंट्स का मात्र एक हिस्सा खर्च किया गया।





विशेषकर दक्षिणपूर्वी एशिया में, इस बात पर आश्रित हैं कि सीमांत समुदायों को हाशिए में रखा जाये ताकि उनके संसाधनों का शोषण किया जा सके।⁶⁶ भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से बड़े बांध बनाने के लिए करीब 2 से 3 करोड़ लोगों को घर छोड़ने पर मजबूर किया गया। 1994 में सरकार ने स्वीकार किया था कि देश में 1 करोड़ आन्तरिक विस्थापित लोग हैं जिनका अभी तक पुर्नवास नहीं किया गया है। इन आन्तरिक विस्थापित लोगों में 40–50% आदिवासी शामिल हैं।⁶⁷ उनका पुनर्वास और पुनःस्थापना एक विभाजनकारी और विवादास्पद मुद्दा है। भारत में बने बांध हालांकि अधिकतर आदिवासी/जनजातीय इलाकों में हैं, लेकिन इन बांधों से राष्ट्रीय औसत की तुलना में आदिवासियों के खेतों का बहुत छोटा हिस्सा सिंचित हो पाता है। 5% से कम आदिवासियों को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध है।⁶⁸

जनजातीय समूहों को “प्रगति” की असंगत कीमत चुकानी पड़ती है। उन्हें अपनी जमीन और अन्य सामान्य संपत्ति संसाधनों के स्वामित्व, अधिकार और उपयोग से वंचित होना पड़ता है। जमीन के साथ गहरा संबंध सभी जनजातीय लोगों की साझी विशेषता है। उदाहरण के लिए, भारत के अंडमान निकोबार द्वीप समूहों की लगभग 400 की आबादी वाली जावरवा जनजाति का प्रस्तावित पुनर्वास, इस बात का संकेत है कि यह जनजाति शीघ्र समाप्त हो जायेगी।

मजदूर

अतीत की तुलना में मजदूरों की हालत में आम तौर पर निश्चय ही सुधार हुआ है। किन्तु, यह व्यावहारिक विडम्बना है कि अधिकारों के लिए सदियों के संघर्ष के बाद भी वैश्वीकृत दुनिया में श्रमिकों को आमदनी में असमानता, कार्यावधि की अनिश्चितता, कार्यस्थल में घटते सुरक्षा के स्तर और काम के घंटों के संदर्भ में सुरक्षा में कमी और आर्थिक व्यवस्थाओं की शोषित श्रमिकों, प्रवासियों, बाल मजदूरों

कार्रवाई की दुविधा

ढाका और चिटगांग में निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों (Export Promotion Zone - ईपीजेड) में 253 से अधिक कारखानों में करीब 88,238 मजदूर काम करते हैं, जिनमें अधिकतर महिलाएं हैं। बांग्लादेश में एक निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्र प्राधिकरण उनके अधिकारों की देखरेख करता है। हालांकि निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों पर सामान्य कानून लागू होते हैं और कुछ कानूनों में उन्हें छूट भी मिलती है, लेकिन निगरानी के ऐसे कारगर प्राधिकरण के अभाव में जिस पर मजदूर भरोसा करते हैं ऐसा लगता है कि ये क्षेत्र सभी मजदूर कानूनों से मुक्त हैं। ईपीजेड नियोक्ता असल में कर्मचारियों को बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी से मुक्त हैं। प्रबंध समिति कर्मचारियों के वर्गीकरण, काम के घंटे, अवकाश के समय, वेतन के भुगतान और प्रसूति लाभ के बारे में एकतरफा फैसले करती है। मजदूर संघ बनाने या संचालित करने की अनुमति नहीं है।

बहुत पहले 1991 में अमरीका के सबसे बड़े मजदूर महासंघ, (American Federation of Labour - Congress of Industrial Organizations - एएफएल-सीआईओ) ने बांग्लादेश के जनरल सिस्टम ऑफ प्रीफ्रेन्सेज (जीएसपी-टैरिफ कन्सेशन) को समाप्त करने की याचिका दायर की। उस पर आरोप था कि इसमें संघ बनाने की आजादी के हनन सहित श्रमिक अधिकारों का हनन किया गया है। बांग्लादेश सरकार द्वारा निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों में मजदूरी संघ बनाने की अनुमति देने के आश्वासन के बाद अमेरिकी सरकार ने बांग्लादेश के विशेषाधिकारों को जारी रखा। जून 1999 में एएफएल-सीआईओ ने बांग्लादेश के खिलाफ इस आधार पर पुनः याचिका दायर की कि बांग्लादेश सरकार ने अपने आश्वासन को मूर्त रूप नहीं दिया। तब से लेकर आज तक बांग्लादेश ने जीएसपी विशेषाधिकार के हटाए जाने की धमकियों का बार-बार सामना किया है। दूसरी ओर, जापान के राजदूत ने स्पष्ट कर दिया कि “ जापान वर्तमान में निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों में ट्रेड यूनियनों के पक्ष में नहीं है” और उसने वहां “सुचारु वातावरण” होने पर संतोष प्रकट किया। अन्य निवेशकों का आग्रह है कि मजदूर संघ की अनुमति देना बांग्लादेश सरकार द्वारा उस अनुबंध का उल्लंघन होगा, जिस में इन क्षेत्रों में शान्तिपूर्ण माहौल बनाए रखने का वायदा किया था। दुविधा की इस स्थिति में आखिर बांग्लादेश सरकार को यह आश्वासन देना पड़ा कि वह मजदूरों और निवेशकों दोनों के हितों की रक्षा के लिए कुछ उपाय करेगी। सरकार की ओर से साफतौर से कहा गया कि “ सरकार का प्राथमिक उद्देश्य निवेश में बढ़ोतरी के जरिये रोजगार के अवसर बढ़ाना है।” इस बीच, अक्टूबर 1993 के बाद से संशोधित न की गयी वेतन दरों पर मजदूरों की भर्ती जारी रही।

ये दरें 22 अमेरिकी डॉलर से अधिकतम 63 अमेरिकी डॉलर प्रतिमाह हैं। इन दरों के कारण अधिकतर मामलों में प्रतिदिन एक अमेरिकी डॉलर से भी कम वेतन मिल पाता है। अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों के अनुसार एक अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन की आय को गरीबी की रेखा से नीचे माना जाता है।⁶⁹



और बंधुआ मजदूरों पर निर्भरता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। ये सभी समस्याएं अटल बनी हुई हैं। अमीर देशों और "हाई टैक" (उच्च प्रौद्योगिकी) उद्योगों में भी रोजगार संबंधों में आए बदलाव कई तरह से मजदूरों के लिए हानिकारक सिद्ध हुए हैं। अल्पावधि के संविदा (कांट्रैक्ट) होने, हर समय रोजगार उपलब्ध न रहने, बेरोजगारी, अनिश्चितता और असुरक्षा बढ़ने की समस्याएं पैदा हुई हैं। यही वजह है कि श्रमिक अपने अधिकारों के बारे में आग्रह करने के इच्छुक नहीं रहे हैं। आधुनिक रोजगार का ढांचा मजदूर संगठनों को हतोत्साहित करता है, जबकि अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र में बहुत गरीब और सबसे कमजोर श्रमिकों को संगठित होने में अतिरिक्त रुकावटों का सामना करना पड़ रहा है।

अनौपचारिक क्षेत्र में पुरुषों के मुकाबले महिलाएं अधिक संख्या में पाई जाती हैं। गाँव में गरीब परिवारों की महिलाएं हर रोज 12-16 घंटे काम करती हैं।⁶⁰ दक्षिण एशिया में महिला श्रमिकों के एक बड़े हिस्से को वास्तव में बेगार करनी पड़ रही है या कठिन श्रम के बावजूद उन्हें पर्याप्त पारिश्रमिक नहीं मिलता। महिलाओं के काम को घरेलू कार्य समझ कर उसके लिए पारिश्रमिक न देने की सांस्कृतिक प्रवृत्ति के चलते बांग्लादेश में तीन-चौथाई महिला मजदूरों को और भारत में 50% महिला श्रमिकों को बेगार करने के लिए विवश होना पड़ता है।⁶¹ भारतीय राज्यों में हरित क्रांति से खुशहाल हुए हरियाणा में, सर्वाधिक बेगार (85.99%) महिला मजदूर हैं। दक्षिण एशिया में साक्षरता और कौशल प्राप्त करने के स्तर में धीमी किन्तु स्थिर गति से प्रगति हुई है, जिससे अधिक संख्या में पुरुष श्रमिक खेती की बजाय विनिर्माण, व्यापार और सेवाओं जैसे अधिक आमदनी वाले क्षेत्रों में जाने लगे हैं। इससे अधिकाधिक अकुशल और अर्ध-कुशल महिलाएं, जिनके पास मोल-भाव करने की सामर्थ्य नहीं है, खेती कार्यों में लगायी जा रही हैं, वहाँ उन्हें और कम दिहाड़ी पर काम करने पर मजबूर होना पड़ता है। पाकिस्तान में आधे से ज़्यादा महिला मजदूरों को 1500/-रुपये से भी कम वेतन दिया जाता है, जबकि दो-तिहाई पुरुष श्रमिक 1500-4000 रुपये प्रतिमाह के उच्चतर आय समूह में आते हैं। शहरी भारत में भी ऐसी ही प्रवृत्ति देखने को मिलती है, जहाँ 27.5% महिलाएं कैजुअल या अनियमित मजदूर बन कर काम करती हैं, जबकि पुरुषों में मात्र 16% मजदूर इस श्रेणी में आते हैं।⁶² भारत ने पुरुष और महिला श्रमिकों के बीच दिहाड़ी और रोजगार की शर्तों में भेदभाव समाप्त करने के लिए 1976 में *समान पारिश्रमिक अधिनियम (Equal Remuneration Act)* पारित किया था। उसके बाद एक चौथाई सदी बीत जाने पर भी महिला श्रमिकों को एक ही कार्य के लिए पुरुषों की तुलना में औसतन (राष्ट्रीय स्तर पर) 35-45% कम दिहाड़ी मिलती है (सारणी-5 देखें)। श्रीलंका में महिलाओं की स्थिति बेहतर कही जा सकती है, जहाँ 50% से अधिक महिला श्रमिक विनिर्माण, व्यापार और सेवा-क्षेत्र जैसे अधिक आमदनी वाले व्यवसायों में लगी हैं।⁶³

राष्ट्रमंडल के गरीब देशों में मजदूरों के द्वारा अपनी हितरक्षा के लिए संगठित होने की प्रक्रिया हमेशा कमजोर रही है। भारत में कुल श्रमिकों के केवल 9 प्रतिशत और मलावी तथा लेसोथो में संगठित क्षेत्र के 14 प्रतिशत श्रमिकों द्वारा ही संघ बनाए गए हैं। किन्तु हाल में सभी देशों में मजदूर संगठनों के गठन में कमी आयी है। असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र में बड़ी संख्या में मजदूर किसी संघ या यूनियन से बाहर रहते हैं और उन्हें श्रम कानूनों के तहत कोई संरक्षण प्राप्त नहीं होता।

राष्ट्रमंडल के श्रमिकों के लिए भविष्य भी शुभसूचक नहीं नज़र आता। उन्हें अपनी आकांक्षाओं को कतरना पड़ेगा और खर्च नियंत्रित करना होगा। काम कम और उसे करने वाले हाथ अधिक होने के कारण अधिकारों को नज़रअंदाज़ किया जाएगा और पूरी आबादी के शोषण की आशंकाएं बढ़ जाएंगी। विकासशील देशों में 11 करोड़ बेरोजगार श्रमिक पहले से मौजूद हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आंकड़ों के अनुसार "इसके अतिरिक्त, 50 करोड़ श्रमिक ऐसे हैं जो अपने परिवार को गरीबी की रेखा से ऊपर रखने के लिए पर्याप्त, 1 अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन, अर्जित करने में भी नाकामयाब हैं। ऐसे लगभग सभी श्रमिक विकासशील देशों में ही हैं। और जो श्रमिक फिलहाल गरीब नहीं हैं, उनमें से अनेकों को नौकरी और आमदनी की बुनियादी सुरक्षा का अभाव है। इस बात के पुख्ता संकेत हैं कि विश्व के अनेक भागों में इस श्रेणी के मजदूरों की संख्या बढ़ती जा रही

सारणी 5 भारत में मजदूरी में लिंग भेद⁶⁴

कार्य का स्वरूप	वेतन-राष्ट्रीय औसत	
	पुरुष	महिला
खेती कार्य	23.40 रुपये	16.40 रुपये
गैर-कृषि कार्य	30.50 रुपये	18.70 रुपये



है। “अगले 10 वर्ष में काम की तलाश करने वाले नए लोगों का दो-तिहाई हिस्सा एशिया में होगा, किन्तु “अफ्रीका में उनकी संख्या अनुमान से कम होगी क्योंकि एच आई वी/एड्स महामारी का अर्थव्यवस्था और श्रम बाज़ार पर घातक असर पड़ रहा है।” सभी स्थानों पर युवा श्रमिकों में बेरोजगारी की दर औसत से लगभग दुगनी हो गई है। इस प्रवृत्ति का सामाजिक स्थिरता पर असर पड़ेगा।

गरीब देश जैसे बांगलादेश, लेसोथो और अन्य जगहों में बढ़ती हुई हताशा की स्थिति अधिकारों को कमजोर बना देती है। निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों में यह बात खासतौर पर लागू होती है, जहां विश्वभर में 2.7 करोड़ लोग कार्यरत हैं। इनमें 90 प्रतिशत महिलाएं हैं। वास्तव में सरकारों ने इन क्षेत्रों में विदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए मज़दूरों के हकों के संरक्षण –उपायों को लागू करना बंद कर दिया है। ऐसे क्षेत्रों में कार्यरत मज़दूर परिभाषा की दृष्टि से सबसे गरीब की श्रेणी में नहीं आते, लेकिन वे देश के भीतर गरीबी के सामान्य स्तर और अधिकारों के संरक्षण के अभाव के सूचक हैं। भारत में 4 निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों में 1 लाख श्रमिकों में अधिकतर महिलाएं हैं। ओवर टाइम (समयोपरि) कार्य अनिवार्य है, लेकिन इसके लिए उन्हें अतिरिक्त वेतन अदा नहीं किया जाता। महिलाओं को रात्रि-पारियों में काम करना पड़ता है, किन्तु नियोक्ताओं द्वारा उनके निवास तक समुचित वाहन की व्यवस्था नहीं की जाती। उन्हें प्रसूति अवकाश नहीं दिया जाता। यहाँ तक कि शौचालयों के इस्तेमाल को भी टोकन जारी करके नियंत्रित किया जाता है। सिद्धान्त रूप में निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों में श्रम कानून लागू होते हैं, किन्तु व्यवहार में उनका उल्लंघन किया जाता है। संघ बनाने की गतिविधियों को हतोत्साहित किया जाता है और संघ बनाने में सक्रिय पाए जाने वाले मज़दूरों को अक्सर नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाता है।⁶⁵

प्रवासी मज़दूरों के वर्ग को भी श्रम कानूनों का कारगर संरक्षण प्राप्त नहीं होता। उनकी भर्ती अधिकतर अकुशल, कम वेतन वाले और अरुचिकर कार्यों के लिए की जाती है। उनका काम के लिए दूसरी जगह आना उनके अपने समाज में गरीबी के होने का सूचक है। इसलिए, वे मज़दूरी में कम वेतन पर काम करने को तैयार हो जाते हैं। अपने समाज की तुलना में उन्हें यह वेतन ज़्यादा लगता है, लेकिन होता कम है। उनका प्रवासी दर्ज़ा, भले ही ‘वैध’ हो, उन्हें खास तरह के कामों से ही जोड़कर रखता है और इस तरह उनकी मोल-तोल करने की सामर्थ्य कम हो जाती है। बल्कि व्यवस्था से अनजान और संभवतः स्थानीय भाषा की जानकारी न होने के कारण, उनकी स्थिति और भी खराब हो जाती है। उदाहरण के लिए, भारत में आंध्रप्रदेश के महबूबनगर में ज़्यादातर काम करने वाले श्रमिक बिहार और उड़ीसा से आते हैं जबकि अधिकतर स्थानीय सक्षम पुरुष और महिलाएं काम की तलाश में दूर-दराज स्थित मुंबई शहर के लिए प्रवास करते हैं। सभी विकास परियोजनाओं से सम्बद्ध स्थानीय ठेकेदार राज्य से बाहर के मज़दूरों को वरीयता देते हैं क्योंकि उनके संगठित होने की आशंका नहीं होती, वे स्थानीय भाषा से अनभिज्ञ होते हैं और कम मज़दूरी पर काम करने के लिए राजी हो जाते हैं।⁶⁶

अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर संगठन समझौतों का समर्थन करने वाले देशों में उनके अनुपालन की स्थिति का मूल्यांकन करता है। एक अध्ययन से पता चलता है कि शिकायत के प्रति अनुपालन और जवाबदेही के मामले में सबसे खराब रिकार्ड वाले 37 देशों में राष्ट्रमंडल के निम्नांकित देश भी शामिल (उल्लंघन के आरोही क्रम में) थे : घाना, पाकिस्तान, बांगलादेश, सिएरा लियोन, ब्रिटेन, मलेशिया, जमैका/सिंगापुर/ तंज़ानिया (तिरछी रेखा से पृथक किए गए राष्ट्रों का स्तर समान है), पाकिस्तान और तंज़ानिया, जो सर्वाधिक बार दोषी पाए गए हैं।⁶⁷ भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के विश्व समुदाय के लिए बुनियादी श्रम मानक निर्धारित करने वाले आठ मूलभूत समझौतों में से चार की पुष्टि नहीं की है (सारणी-6 देखें)।

अंतर्राष्ट्रीय समझौतों में “सामाजिक शर्त” शामिल किए जाने के मुद्दे पर विश्व व्यापार और विकास संबंधी विचार-विमर्श में काफी जोर दिया गया है। इस तरह की धारा या शर्त का लक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय समझौतों में श्रम संबंधी न्यूनतम मानदंड सुनिश्चित करना है। किन्तु, व्यापार वार्ताओं में इस विषय को शामिल करने और इसे निवेश से जोड़ने का जोरदार विरोध हुआ है। मलेशिया सहित अनेक विकासशील राष्ट्रमंडल देशों ने इस धारा का कड़ा विरोध किया है। कुछ राष्ट्र इसका विरोध इसलिए करते हैं क्योंकि इसके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सौदेबाजी की अतिरिक्त शर्तों का आधार बनने की संभावना है; अन्य राष्ट्रों के विरोध की वजह यह है कि इसका समर्थन करने का अर्थ है विश्व व्यापार संस्था के रूप में मूर्तिमान ‘वैश्वीकरण द्वारा विकास’ सिद्धान्त को वैधता देना। कुछ राष्ट्रों की दलील है कि ‘सामाजिक शर्तों’ का लक्ष्य भले ही वैश्वीकरण के प्रतिकूल प्रभाव को कम करना हो, लेकिन उन्हें लागू करना बड़ा कठिन होगा। यह कहा जा सकता है कि अनेक राष्ट्रमंडल देश चूंकि अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के समझौतों का अनुसमर्थन कर चुके हैं, इसलिए वे सामाजिक मानकों के प्रति पहले से वचनबद्ध हैं और ये मानक सेवार्त गरीबों के कष्ट कम करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हैं।



सारणी 6 आई एल ओ के मूलभूत समझौते –दक्षिण एशिया में पुष्टि की स्थिति⁶⁸

समझौता	बांग्लादेश	भारत	पाकिस्तान	श्रीलंका
# 29 जबरन मजदूरी समझौता (1930)	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 87 संघ बनाने की स्वतंत्रता और संगठित होने के अधिकार की सुरक्षा का समझौता (1948)	पुष्टीकृत	–	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 98 संगठित होने और सामूहिक मोल-तोल करने के अधिकार का समझौता (1949)	पुष्टीकृत	–	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 100 समान पारिश्रमिक समझौता (1951)	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 105 बेगार उन्मूलन समझौता (1957)	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 111 भेदभाव (रोजगार एवं व्यवसाय समझौता (1958)	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत
# 138 न्यूनतम आयु समझौता, (1973)	–	–	–	पुष्टीकृत
# 182 बाल मजदूरी के सबसे बुरे रूपों को समाप्त करने के लिए निषेध एवं तत्काल कार्रवाई करने संबंधी समझौता (1999)	पुष्टीकृत	–	पुष्टीकृत	पुष्टीकृत

किन्तु ग्राहक-प्रधान बाज़ार में प्रतियोगी बनने की उतावली में अनेक राष्ट्रमंडल देश मजदूरों के संगठित होने के अधिकारों को संकुचित कर रहे हैं। स्वाज़िलैंड और कैमरून इसके उदाहरण हैं। राष्ट्रमंडल लोकतंत्र के प्रति संकल्पबद्ध है और लोकतंत्र संगठन खड़ा करने के अधिकार की रक्षा करता है, न कि उसे समाप्त करता है, पर ऐसा कई सदस्य देशों में हो रहा है। भारत जैसे देश श्रम कानूनों में संशोधन कर रहे हैं ताकि अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के नाम पर श्रमिक अधिकारों को – जिन्हें कड़े संघर्षों द्वारा अर्जित किया गया था – सीमित किया जा सके। सरकार *औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 (The Industrial Disputes Act, 1947)* में संशोधन करने पर गंभीरता से विचार कर रही है ताकि नियोक्ताओं को सरकार की अनुमति के बिना ही मजदूरों की छँटनी का अधिकार दे दिया जाये। अगर संसद ने इस संशोधन को मंजूरी दे दी तो संगठित क्षेत्र में 3.5 करोड़ से अधिक कर्मचारी अपने नियोक्ताओं की अनुकम्पा पर निर्भर हो जायेंगे, जो आर्थिक ज़रूरत की आड़ में कभी भी उनकी छँटनी कर सकेंगे या तालाबंदी लागू कर सकेंगे।⁶⁹ राष्ट्रमंडल को मजदूरों के अधिकारों की निगरानी करने और इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि आर्थिक मजबूरियों के कारण मजदूरों की समानता के अधिकार को बंधक न रखा जाये। उसे संगठित और असंगठित दोनों ही क्षेत्रों के मजदूरों की सहायता के लिए आगे आना होगा।

वयोवृद्ध

नई सहस्राब्दि के आने वाले वर्षों में राष्ट्रमंडल देशों को समाज के एक अन्य कमजोर वर्ग यानि वृद्धों पर भी ध्यान देना होगा और उनकी खुशहाली तथा अधिकारों की रक्षा के प्रावधान करने होंगे। वर्तमान में, 60 वर्ष से अधिक आयु के 60 प्रतिशत लोग विकासशील देशों में रह रहे हैं। इस सदी के तीसरे दशक तक यह संख्या 70 प्रतिशत पर पहुंच जायेगी। कुछ विकासशील देशों में, जहां स्वास्थ्य देखभाल पर विशेष ध्यान दिया गया है, इस सदी के तीसरे दशक तक 65 वर्ष से अधिक आयु के लोगों का अनुपात कुछ विकसित देशों के वर्तमान अनुपात से अधिक हो जायेगा। वयोवृद्धों में महिलाओं की संख्या अधिक है।⁷⁰

60 वर्ष या उससे अधिक आयु के 7.5 करोड़ से अधिक नागरिकों के होने के कारण भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है जहाँ सर्वाधिक वयोवृद्ध लोग रहते हैं। वर्ष 2025 तक दक्षिण एशिया की आबादी में 10% से अधिक संख्या 60 या उससे अधिक आयु के लोगों

की होगी, और इन में श्रीलंका पहले स्थान पर होगा (सारणी 7 देखें)। भारत में वृद्ध और वयोवृद्ध, यानी 70 वर्ष और उससे अधिक आयु के लोगों की संख्या इसी अवधि के दौरान 6.3 करोड़ हो जाने की संभावना है। इस आयु-समूह को रूग्णता और अक्षमता का अधिक सामना करना पड़ेगा, जिससे स्वास्थ्य देखभाल और वृद्धों की देखभाल करने वाले संस्थानों पर अधिक निवेश करना होगा। भारत की आबादी का तीन-चौथाई हिस्सा चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है, अतः वयोवृद्ध लोगों की संख्या गाँवों में अधिक है। ग्रामीण भारत में रहने वाली वयोवृद्ध महिलाओं में 90% से अधिक निरक्षर हैं।⁷¹ इन वृद्ध महिलाओं में से तीन-चौथाई, अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अपने बच्चों, पोते-पोतियों अथवा वृद्धावस्था आश्रमों पर निर्भर हैं। 60% से अधिक वृद्ध महिलाओं के पास न तो स्वयं की संपत्ति है न ही स्वयं का भरण-पोषण करने के लिए वित्तीय परिसंपत्ति और वे अक्सर एक शोषक पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के रहमो-करम पर हैं।

सारणी 7 दक्षिण एशिया में वयोवृद्धता-मौजूदा स्थिति और भविष्य के लिए अनुमान⁷²

देश	वर्ष 2000 में कुल जनसंख्या (करोड़ में)	2000 में 60+ आयु के लोग	2025 में 60+ आयु के लोग	2050 में 60+ आयु के लोग
बांग्लादेश	13.74	4.9%	8.4%	16%
भारत	100.89	7.6%	12.5%	20.6%
पकिस्तान	14.12	5.8%	7.3%	12.4%
श्रीलंका	1.89	9.3%	18%	27.6%

दवाओं और उन्नत सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली से आयु दीर्घ तो हुई है, लेकिन उनसे सामान्य बेहतर स्वास्थ्य और पोषण की गारंटी नहीं दी जा रही है। निःसंदेह, विकसित राष्ट्र बेहतर स्वास्थ्य देखभाल, पोषण स्तर, और सामाजिक सुरक्षाजाल के माध्यम से वृद्धों की देखरेख करने में सफल रहे हैं। वे अपनी वयोवृद्ध आबादी के लिए योजनाएं बनाने और उनके लिए आर्थिक उपाय विकसित करने में भी सफल रहे हैं ताकि भविष्य में भी अधिकारों की बेहतर रक्षा की जा सके। लेकिन यहां उनकी पेंशनों में कटौती हो रही है। जहां तक विकासशील देशों का सवाल है, उनके पास आर्थिक शक्ति नहीं है और न ही वे तात्कालिक चिंताओं से इतने मुक्त हैं कि वयोवृद्ध आबादी के लिए योजनाएं बना सकें, खासकर इसलिए कि उन्हें आर्थिक दृष्टि से अलाभकारी समझा जाता है। वृद्धों की देखभाल अधिकतर समाज के निजी क्षेत्र और पारिवारिक संबंधों पर निर्भर है। बदलते माहौल के दबाव के चलते सामुदायिक और पारिवारिक सहायता का ताना-बाना टूटता जा रहा है। समाज के दिल में एक तरह के जातीय अल्पसंख्यक समूह की तरह वयोवृद्धों को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से दर-किनार कर दिया गया है, वे स्टिरिओटाइप हो गए हैं, अक्सर उन्हें कम करके आंका जाता है, और उनकी उपेक्षा की जाती है। वयोवृद्धों के साथ शारीरिक और मानसिक दुर्व्यवहार की समस्याएं अधिकाधिक सामने आने लगीं हैं। 'वृद्ध माता-पिताओं के परित्याग' पर उतना ध्यान नहीं जाता, जितना पत्नी पर मारपीट किए जाने या बच्चों के साथ दुर्व्यवहार की ओर जाता है। गरीब, कम आमदनी में या बिना किसी आय के स्रोत के वृद्धावस्था में प्रवेश करते हैं। जीवन भर बार-बार होने वाली बीमारियों, कुपोषण और रहने की निम्नस्तरीय स्थितियों से वे खोखले हो चुके होते हैं। महिलाओं के मामले में, बार-बार बच्चे पैदा करने और बच्चों से भी अधिक कुपोषण की शिकार रहने के कारण, वे शीघ्र वृद्धावस्था में प्रवेश करती हैं। भारत और तंज़ानिया, राष्ट्रमंडल के दो ऐसे देश हैं, जहां ऐसी स्थिति पाई गई है।⁷³

फिर भी, वृद्ध परिवार की खुशहाली और आर्थिक स्थिति में योगदान करते हैं। जहां माता-पिता दोनों को परिवार का खर्च पूरा करने के लिए काम करना पड़ता है और वे बच्चों की देखभाल के लिए समय नहीं निकाल पाते, वहां दादा-दादी यह दायित्व निभाते हैं। इस योगदान की खास मिसालें अफ्रीका के एच आई वी-संक्रमित उप-सहारा क्षेत्र में मिलती हैं, जहां अनेक परिवारों में माता-पिता नहीं रहे हैं और दादा-दादी या नाना-नानी बच्चों की परवरिश के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इनमें दादी और नानी का खास योगदान देखने को मिलता है। वे बच्चों के लिए भरण-पोषण, वस्त्र और संभव हो तो शिक्षा की भी व्यवस्था कर रही हैं। मानव विकास और अन्य अनुसंधानों के सूचकांकों में विश्व की आबादी के इस बड़े और बढ़ते हुए हिस्से की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। उन समुदायों में, जहां आबादी में वयोवृद्ध लोगों की बड़ी संख्या हो, भविष्य में गरीबी उन्मूलन की योजना बनाते समय उनकी स्थिति को ध्यान में रखकर कुछ ठोस उपाय करने होंगे।



विकलांग

अनुमान है कि विश्व की आबादी में कम से कम 10% (60 करोड़) लोग ऐसे हैं जो किसी न किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक अक्षमता से ग्रस्त हैं। यह स्थिति उनकी खुशहाली पर असर डालती है। इनमें से दो तिहाई लोग विकासशील देशों से हैं और करीब 40 करोड़ एशिया प्रशांत (Asia Pacific) में हैं।¹⁴ मात्र 2% विकलांग बच्चों को शिक्षा और/या पुर्नवास सुविधाएं मिल पाती हैं। करीब 2 करोड़ भारतीय किसी न किसी प्रकार की अक्षमता से ग्रस्त हैं, चाहे वह सुनने, देखने, बोलने, चलने या मानसिक क्षमताओं से सम्बद्ध हो। इनमें से ज्यादातर लोग ग्रामीण इलाकों में रहते हैं, जिनकी पहुंच चिकित्सा-उपचार और पुर्नवास सुविधाओं तक नहीं है। परंतु गैर-सरकारी आंकड़ों के मुताबिक यह संख्या 7-8 करोड़ से अधिक है। इन में से अधिकतर लोग गाँवों में बसते हैं जहाँ इन्हें चिकित्सा और पुर्नवास की सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पातीं। मोतियाबिंद और वृद्धावस्था, दृष्टि विकलांगता के मुख्य कारण हैं, जबकि चलने-फिरने संबंधी विकलांगता का मुख्य कारण पोलियो है, जो बच्चों को प्रभावित करता है।¹⁵ बांग्लादेश में विकलांगता के बारे में अधिकारियों के अनुमान सही नहीं हैं क्योंकि वहाँ आबादी का 1.6 प्रतिशत लोग अक्षम बताए गए हैं। किन्तु, स्वयंसेवी संगठनों का अनुमान है कि विकलांगों की वास्तविक संख्या इससे 7-8 गुना अधिक है।¹⁶ पाकिस्तान में विकलांग व्यक्ति सर्वाधिक उपेक्षित नागरिक हैं-उनसे नज़रें फेर ली जाती हैं, उनकी बात को अनसुना कर दिया जाता है। प्रामाणिक सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार अनुमान है कि आबादी में 2-3% लोग किसी न किसी तरह की अक्षमता से पीड़ित हैं।¹⁷

विकलांग महिलाओं के साथ ज्यादा भेदभाव होता है और उन्हें सामाजिक लांछन का सामना करना पड़ता है। व्यावसायिक प्रशिक्षण और मार्गदर्शन कार्यक्रमों के लाभार्थियों में उनकी संख्या एक-तिहाई से भी कम है।¹⁸ ज्यादातर गरीब परिवार की महिलाएं तनाव से सम्बद्ध मानसिक असंतुलन का शिकार बनती हैं जिससे उनकी और भी उपेक्षा एवं शोषण होता है।¹⁹ इस तथ्य को देखते हुए कि गरीब परिवारों में महिलाओं के स्वास्थ्य पर पर्याप्त धन खर्च नहीं किया जाता, मानसिक-स्वास्थ्य देखभाल और परामर्श सुविधाओं तक उनकी पहुँच की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

विकलांगता से भी अधिक रूकावटें शिक्षा, रोजगार, परिवहन, स्वास्थ्य और सामाजिक संरचना की दृष्टि से पैदा होती हैं, जिनके अभाव में विकलांग व्यक्ति पूर्ण रूप से अपनी क्षमताओं का इस्तेमाल नहीं कर पाता। विकलांग व्यक्ति के साथ भेदभाव किए जाने की आशंका अधिक रहती है क्योंकि समुदाय किसी भी 'भिन्नता' (difference) को स्वीकार करने को तैयार नहीं होता और विकलांग व्यक्तियों को अधिकार सम्पन्न नहीं मानता है। विकलांग व्यक्तियों को न केवल हरेक व्यक्ति की तरह अपनी प्रतिभा के विकास के अवसरों की आवश्यकता होती है, बल्कि उनकी विशेष ज़रूरतें पूरी करने के लिए अतिरिक्त संसाधन और सुविधाएं भी ज़रूरी होती हैं। विकलांगता और गरीबी के बीच सीधा और सुदृढ़ संबंध है।²⁰ एक ओर शिक्षा तथा रोजगार में भेदभाव से विकलांग व्यक्ति के निर्धन होने की आशंका बढ़ जाती है, वहीं दूसरी ओर, उपचार एवं पुर्नवास संसाधनों के अभाव के कारण गरीबों को जन्म संबंधी न्यूनता, कुपोषण या जीवनकाल में होने वाली क्षति और बीमारियों के कारण विकलांगता का खतरा बढ़ जाता है।²¹ चिकित्सा प्रौद्योगिकी और उपचार पद्धतियों में हुई तीव्र प्रगति को देखते हुए विकलांगों के लिए उन्नत स्वास्थ्य देखभाल और सहायता प्रणालियों की व्यवस्था की जा सकती है। किन्तु विकासशील देशों में अक्सर यह पाया जाता है कि विकलांगों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता और वहाँ वित्तीय संसाधनों के आवंटन तथा विकलांग व्यक्तियों की विशेष ज़रूरतों को पूरा करने के लिए प्रशिक्षित और विशेषज्ञ कर्मियों का अभाव होता है।

अधिकतर दक्षिण एशियाई देश विकलांगों को नौकरियों में 1 से 3 प्रतिशत तक आरक्षण देते हैं। श्रीलंका में 3% नौकरियों विकलांगों के लिए निर्धारित हैं, जो ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में केन्द्रित हैं। निगरानी रखने वाले तंत्र के अभाव, निजी क्षेत्र में नियोक्ताओं को प्रोत्साहित न किए जाने तथा परिवहन और पहुंच की समस्याओं से योजना के मार्ग में रूकावट आती है।²² भारत सरकार ने 1996 में एक कानून पारित करके शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण, रोजगार देने के तौर-तरीकों से सार्वजनिक परिवहन में यात्रा की सुविधाओं तक विकलांग व्यक्तियों की पहुंच के अधिकारों को मान्यता प्रदान की। इसमें विकलांगता के लिए व्यवधान मुक्त और रहन-सहन का समन्वित वातावरण निर्मित करने का भी प्रावधान है।²³ समुचित संसाधनों के आवंटन के अभाव और कार्यान्वयन तंत्र न होने के कारण यह कानून कारगर साबित नहीं हुआ है।





गरीबी का स्वरूप

“गरीबी गर्मी के एहसास की तरह है : आप इसे देख नहीं सकते, सिर्फ महसूस कर सकते हैं। अतः गरीबी को जानने के लिए गरीबी से गुज़रना पड़ेगा।”⁶⁴

गरीबी-संबंधी आंकड़ों से उपेक्षित लोगों की विशाल आबादी का संकेत भर मिलता है। उनके जीवन की दशा का पता नहीं चलता। उनकी स्थिति इतनी दिल दहला देने वाली होती है कि अभाव और भय के माहौल में बीते जीवन के व्यक्तिगत कष्टों को व्यक्त नहीं किया जा सकता।

गरीबी के स्वरूप का परीक्षण करने से इस तथ्य का पता चलता है कि आखिर गरीबी किस तरह मानवाधिकारों को हासिल करने या उनका आनन्द उठा पाने में बाधक है। नागरिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, या संस्कृतिक, किसी भी तरह के अधिकारों का उपभोग कर पाना, खाद्य सुरक्षा, शिक्षा, भौतिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, संपत्ति, न्याय तक पहुंच जैसे संसाधनों के अभाव में तथा समुचित प्रक्रिया के बिना संभव नहीं है। और ये सभी संसाधन गरीबी के रहते हासिल नहीं किए जा सकते।

मानवीय गरिमा मानवाधिकारों की अवधारणा का केंद्र बिन्दु है और हमें मानव के व्यक्तित्व के ऐसे अनेक आयामों के प्रति सचेत करती है जो गरीबी की वजह से नकार दिए गए हैं। गरीबी का अर्थ है— भौतिक और आर्थिक असुरक्षा, भविष्य का भय और कमजोरी का सतत अहसास। यह उन क्षमताओं और गुणों का अभाव है जो बेहतर जीवन जीने में मददगार होते हैं। बेहतर जीवन से अभिप्राय उन स्थितियों तक पहुंच से है जो एक तर्कसंगत भौतिक अस्तित्व को संभव बनाती हैं और व्यक्तियों तथा समुदायों को उनकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक क्षमताओं को हासिल करने में मदद करती है। गरीबी का संबंध अवसरों—यानी चिंतन, कलात्मक रचनाशीलता, नैतिकता की व्याख्या और विकास तथा समुदाय के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में भागीदारी और योगदान के अवसरों के अभाव के साथ है। इस आयाम को अर्मत्य सेन की मानव ‘क्षमताओं’ की अवधारणा में व्यक्त किया गया है। इनकी परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा है कि क्षमताएं मूल्यवान ‘फंक्शनिंग्स’ (कार्य व्यापारों) अथवा ‘स्टेट्स ऑव वैल बीइंग’ (खुशहाली की स्थिति)⁶⁵ को प्राप्त करने के अवसर प्रदान करती हैं। इस खुशहाली के कई आयाम हैं, भौतिक – जैसे भोजन और आवास – किन्तु अधिक जटिल सामाजिक उपलब्धियां भी इसका हिस्सा हैं, जैसे समुदाय के जीवन में हिस्सा लेना और बिना शर्म और संकोच के लोगों के बीच जाना।

गरीबी क्षमता के साथ-साथ आत्मविश्वास को भी छीन लेती है और राष्ट्रों, समुदायों तथा परिवारों के साथ पीढ़ी-दर-पीढ़ी चिपकी चली जाती है और उन्हें जीवन-निर्वाह स्तर से आगे नहीं बढ़ने देती, जबकि अन्य लोग सब तरह से उनसे आगे निकल जाते हैं। गरीबी से जो व्यापक परनिर्भरता उत्पन्न होती है, वह सब कुछ स्वीकार कर लेने और दासता की आदतों को पैदा करती है, जिससे सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों में श्रेणीबद्धता मजबूत होती है। आवासहीनता, खराब स्वास्थ्य और शिक्षा के अभाव से लोगों की क्षमता का विकास रुकता है। वे विकास में उचित भागीदारी के लाभ से वंचित हो जाते हैं और इसके कारण राष्ट्र के वे मानव संसाधन व्यर्थ हो जाते हैं जिनकी बेहद ज़रूरत है।

गरीबी उस ‘स्वायत्त व्यक्ति’ की अवधारणा का उपहास करती है जो मानवाधिकारों की प्रबल धारणा के केंद्र में है। गरीबी की हालत में चिर स्थापित पारिवारिक मानदंडों का निर्वाह संभव नहीं है। दासता में अक्सर बच्चे तक बिक जाते हैं और युवा लड़के-लड़कियों को मजबूरन दूरदराज़ जगहों में जाना पड़ता है और अक्सर जोखिमपूर्ण स्थितियों में रहना पड़ता है ताकि वे अपनी कमाई से अल्प राशि बचाकर घर भेज सकें। पुरुष परिवार के भरण-पोषण के प्रयास में घोर परिश्रम करके थक जाते हैं या अपने दायित्वों से मुँह मोड़ लेते हैं और छोटे-छोटे काम की तलाश में अन्यत्र चले जाते हैं, जिससे पत्नी और परिवार पर भरण-पोषण का अतिरिक्त दायित्व आन पड़ता है। श्रीलंका में जातीय संघर्ष के चलते अनेक औरतें विधवा हो गई हैं, जिससे उन्हें दुर्घटना के कारण तत्काल परिवार का दायित्व संभालना पड़ रहा है। हाल में किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि ग्रामीण भारत में महिलाओं द्वारा संचालित परिवारों की संख्या पिछली सदी के अंतिम तीन दशकों में बढ़कर 20 से 35% पर पहुंच गयी है।⁶⁶ एक अन्य अध्ययन के अनुसार बांग्लादेश में महिला-मुखिया वाले परिवार पुरुष-मुखिया वाले परिवारों की तुलना में बहुत निर्धन हैं।⁶⁷ भारत में बड़ी संख्या में महिला- मुखिया वाले



परिवारों को पोषण के निम्नस्तर, स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा के अभाव की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इस क्षेत्र में महिला कृषकों की मवेशी, ऋण, और आधुनिक प्राद्योगिकी जैसे संसाधनों तक पहुंच नहीं है। अगर उनकी पहुंच संसाधनों तक होती, तो निश्चय ही उन्हें जीवन स्तर ऊंचा उठाने में मदद मिलती।⁸⁸

दक्षिण एशिया के अनेक गरीब देशों में सतत भुखमरी, बेरोजगारी, ऋण या बीमारी का बोझ सहन करने में अक्षम परिवारों में अक्सर मुखिया पहले सगे-संबंधियों की और फिर स्वयं की हत्या कर देते हैं। पाकिस्तान के बारे में ख़बर है कि वहाँ 2002 में गरीबी का बोझ बर्दाश्त न कर पाने के कारण, हर रोज़ कम से कम 7 व्यक्तियों ने आत्महत्या की।⁸⁹ भारत में कंगाल परिवारों-चाहे वे हरियाणा और पंजाब के छोटे किसान हों जो अपने खेतों में पानी भरा रहने की समस्या का सामना कर रहे थे; या आन्ध्रप्रदेश के रायल सीमाक्षेत्र में छोटे और मझौले किसान हों, जिन्हें अपनी कपास की फसल बचाने के लिए आधुनिक कीटनाशक और कृषि उपकरण इस्तेमाल करने के लिए भारी कर्ज़ लेना पड़ा, लेकिन इस के बावजूद अपनी फसल को उजड़ते पाया; अथवा तमिलनाडु के छोटे और मझौले किसान हों, जिन्हें सूखे के कारण अपनी फसलें गंवानी पड़ी या आन्ध्रप्रदेश में करीमनगर के ऋणग्रस्त बुनकर हों, जिन्हें भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र उदारीकरण के कारण हथकरघा उत्पादों की मांग में गिरावट से भारी नुकसान उठाना पड़ा—सभी में एक बात समान देखने को मिलती है कि अपने कष्ट निवारण के लिए उन्होंने आत्महत्या का रास्ता चुना। इस तरह के कई किस्से समाचार माध्यमों द्वारा प्रकाशित होते रहे हैं। इस तरह और अन्य रूपों में गरीबी अच्छे-भले और भरे-पूरे परिवार को तबाह कर देती है— जबकि मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा में कहा गया है कि समाज की स्वाभाविक और मूलभूत इकाई यानी परिवार की रक्षा का दायित्व समाज और राज्य को वहन करना चाहिए।⁹⁰

फिर भी, गरीबी सिर्फ गरीबों की ही समस्या नहीं है। गरीबी का असर अमीरों पर भी पड़ता है। यह समाज को अलग-अलग हित-साधक समूहों में विभाजित करती है और इस तरह एक अन्य मानवाधिकार उद्देश्य को निष्फल हनन करती है—वह है मानव और समाज की एकता। आधुनिक युग में जहां एक ओर समृद्धि का जीवन सभी को प्रभावित करता है, वहीं गरीबी से सामाजिक सहमति और राजनीतिक स्थिरता के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न होता है। यह गरीब और अमीर दोनों के नैतिक ताने-बाने को समान रूप से तहस-नहस करती है। व्यापक गरीबी के दुष्परिणामों को राष्ट्रों की सीमाओं में बंद नहीं रखा जा सकता और महज़ प्रवास और शरण पर कड़े से कड़े प्रतिबंध लगाकर इनसे नहीं निबटा जा सकता। अक्सर गरीबों को अलग झोपड़पट्टियों में धकेल कर किए जाने वाला गरीबी का 'प्रबन्धन' और भी दमनकारी है, क्योंकि सरकारें इस तथ्य पर ध्यान नहीं देती कि व्यापक गरीबी से जिन बीमारियों और अन्य सामाजिक बुराइयों का जन्म होता है उन्हें अलग की गई तंग बस्तियों तक सीमित नहीं रखा जा सकता। उनका असर अंततः सभी पर पड़ता है। मध्यवर्ग का सुरक्षा के प्रति अधिक से अधिक मोह, उसकी सामाजिक महापरिवर्तन की इस आशंका का सूचक है कि गरीबी और उपेक्षा की लहरों के ज्वार में समृद्ध वर्ग का सारा साजो-सामान बह सकता है। लोकतांत्रिक समुदायों को कुछ उपाय अवश्य ढूँढ़ना होगा, ताकि इस ज्वार को रोका जा सके। लेकिन, गरीबी की मात्रा, गहराई और प्रसार खतरे की घंटी बजा रहा है।